* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Mitra

वर्ष ७२

संख्या ८

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, अगस्त १९९८ ई०

चित्र-सूची

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)
विदेशमें—US$11

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

सिंहासनासीन श्रीराधाजी
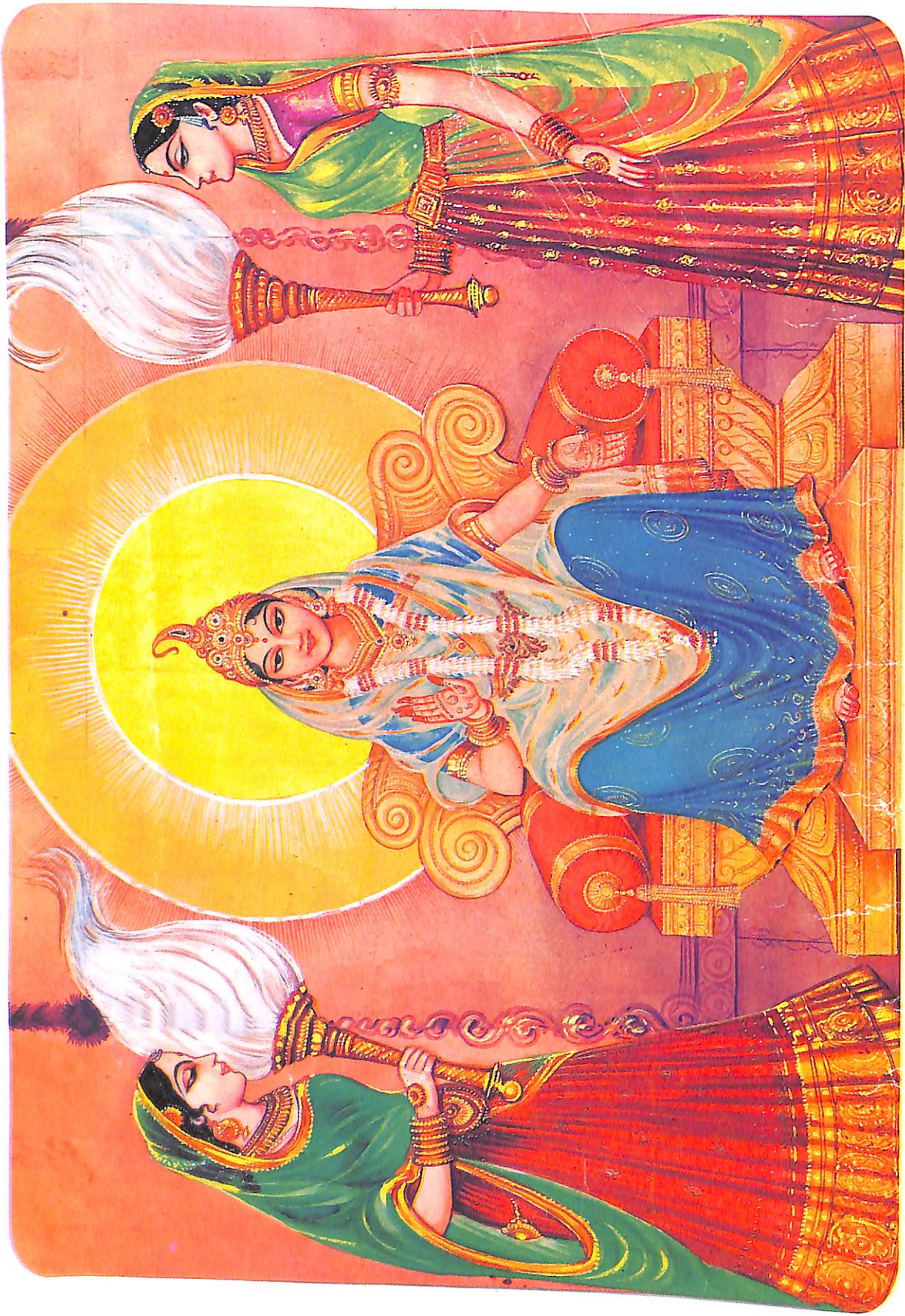
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण
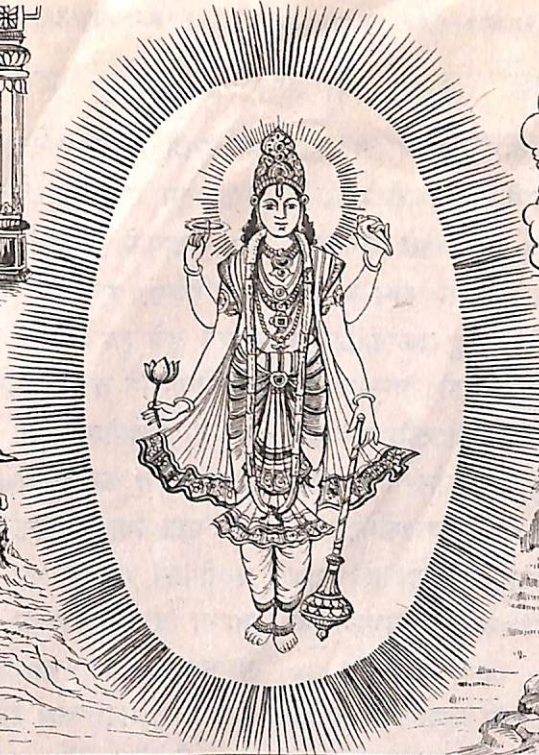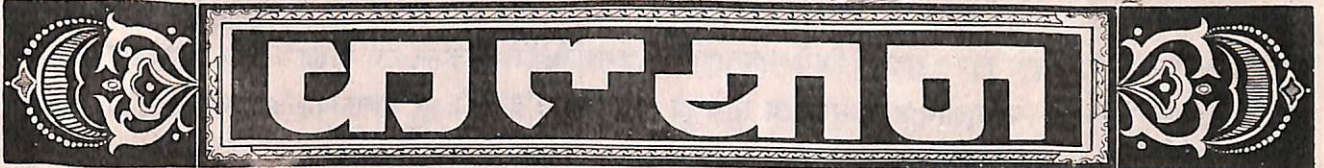
वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ | गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, अगस्त १९९८ ई० | संख्या ८ | पूर्ण संख्या ८६१

श्रीराधारानीकी चरण-वन्दना

श्रीराधारानी-चरन बंदौं बारंबार।
जिन के कृपा-कटाच्छ तें रीझैं नंदकुमार॥
जिन के पद-रज-परस तें स्याम होयँ बेभान।
बंदौं तिन पद-रज-कननि मधुर रसनि के खान॥
जिन के दरसन हेतु नित बिकल रहत घनस्याम।
तिन चरननि में बसै मन मेरौ आठौं जाम॥
जिन पद-पंकज पर मधुप मोहन-दृग मँड़रात।
तिन की नित झाँकी करन मेरौ मन. ललचात॥
'रा' अच्छर कौं सुनत ही मोहन होत बिभोर।
बसै निरंतर नाम सो 'राधा' नित मन मोर॥

(पद-रत्नाकर)

कल्याण

पापको छोटा समझकर उससे कभी बेखबर न रहो; याद रखो, आगकी जरा-सी चिनगारी बड़े भारी शहरको जला देती है, एक छोटा-सा बीज बड़े भारी जंगलका निर्माण कर सकता है। यह मत समझो कि काम-क्रोध-लोभका क्षणिक आवेश हमारा क्या बिगाड़ सकेगा, इनको समूल नष्ट करनेका सतत प्रयत्न करते रहो। असावधानी विनाशको बहुत शीघ्र बुला लाती है; सचेत रहो, सावधान रहो, जीवन-महलके किसी भी दरवाजेसे काम-क्रोध-रूपी किसी भी चोरको अंदर न घुसने दो और सावधानीके साथ, जो पहले घुसे बैठे हों, उन्हें दृढ़ता और शूरताके साथ निकालनेकी प्राणपणसे चेष्टा करते रहो, सावधानी ही साधना है।

पापोंके सरदार राग-द्वेष हैं और इनका राजा है अज्ञानजनित अहंभाव, उसे सिंहासनसे उतारकर भगवान्‌का गुलाम बना दो और सिंहासनपर सदाके लिये भगवान्‌को बिठा दो, फिर ये गुलाम-के-गुलाम दोनों राग-द्वेष सीधे हो जायँगे और राजा—भगवान्‌के अनुकूल ही बरतेंगे। द्वेष उन वृत्तियों या व्यापारोंसे लड़ेगा जो भगवान्‌के विरुद्ध होंगे और राग उनसे प्रेम करेगा जो भगवान्‌के अनुकूल होंगे। 'अहं'-का साथी एक और है, वह है 'मम'। इस 'मम' को भगवान्‌के चरणोंमें बाँध दो, यानी यह समझ लो कि बस, भगवान्‌के चरण ही मेरे हैं, 'मम' को और कहीं भी भटकने मत दो। फिर इस 'मम' के बन्धनमें प्रेमकी डोरी फँसाकर टानो, भगवान् तुम्हारे पास आप ही चले आयेंगे।

जगत्‌में जो कुछ है, सब भगवान्‌की ही मूर्ति है, यह समझकर सबसे प्रेम करो, सबकी पूजा करो, अपना जीवन सबके लाभके लिये समर्पण कर दो। भूलकर भी ऐसा काम न करो, जिससे सबमेंसे किसी एकका भी अहित हो, एकके भी कल्याणमें बाधा पहुँचे। दीन, हीन, सरल, असहाय बच्चे माँको ज्यादा प्यारे हुआ करते हैं, भगवान्‌रूपी जगज्जननीको भी उसके गरीब बच्चे अधिक प्रिय हैं, इसलिये यदि तुम माताका प्यार पाना चाहते हो तो माताके उन प्यारे बच्चोंसे प्रेम करो, उन्हें सुख पहुँचाओ, माता स्वयं ही प्रसन्न होकर अपना वरद हस्त तुम्हारे मस्तकपर रख देंगी, तुम सहज ही कृतार्थ हो जाओगे।

दुखियामें, अनाथमें, भूखेमें, रोगीमें, असहायमें, विधवामें, अपाहिजमें, मूक पशुओं और पक्षियोंमें, विपद्ग्रस्तोंमें, पापमें डूबे हुए लोगोंमें, पथ भूले हुए पथिकोंमें, शत्रुतासे बरतनेवालोंमें तथा आडम्बरी लोगोंमें भगवान्‌को देखो और उनकी यथायोग्य पूजा कर—तन, मन, धनसे यथोचित उनका हित कर भगवान्‌के प्रियपात्र बनो।

सुख न पहुँचा सको तो दुःख तो किसीको न पहुँचाओ, धरतीपरसे पापका भार हलका न कर सको तो पापमय जीवन बनाकर उसके भारको बढ़ाओ मत। जीवनको प्रभुमय, सादा, स्पष्ट, सरल एवं श्रद्धामय बनाओ और विवेकको सदा साथ रखो।

इन्द्रियोंपर और मनपर विजय पानेकी चेष्टा करो, अपनी कमजोरियोंसे सावधान रहो, धीरजके साथ परमात्मापर भरोसा रखकर इन्द्रियोंको बुरे विषयोंकी ओर जानेसे रोको, मनको प्रभु-चिन्तन या सत्-चिन्तनके कार्यमें रोककर कुविषयोंसे हटाओ।

उखड़ो मत, झल्ला न उठो, झुँझलाना छोड़ दो, धीरतासे सुनो, अपनी झूठी निन्दा भी चुपचाप सुनो, फिर शान्त चित्तसे विचार करो, क्यों वह तुम्हारी निन्दा करता है? जरूर कोई कारण मिलेगा, अधिकांशमें तो अपनी कोई कमजोरी ही मिलेगी, उसे दूर करो और निन्दकका उपकार मानो। फूलो मत, हर्ष-विह्वल न हो उठो, बड़ाई सुनकर अपनी कमजोरियोंको न भूल जाओ और उनसे लापरवाह न बनो। बड़ाईका कारण अपनेको समझकर अभिमान न करो, परमात्माका धन्यवाद करो, जिसने तुमसे बड़ाईका काम करवाया। बड़ाई करनेवालोंका उपकार मानो, परंतु परमात्मासे प्रार्थना करो कि वह बड़ाई न दें। बड़ाईको कभी गले न लगाओ, बड़ी मीठी छुरी है, अजब हलाहलकी मीठी घूँट है; बड़ाईसे सदा दूर भागो। बड़ाईके लिये कोई कार्य न करो।

—'शिव'

मानव-जीवनकी सफलताका उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रत्येक मनुष्यको मानव-जीवन पाकर अपनी आत्माका कल्याण अवश्य कर लेना चाहिये, इसीलिये यह दुर्लभ मानव-तन मिला है। यदि मानव ऐसा नहीं करता तो शास्त्र उसे आत्महा कहता है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥

(श्रीमद्भा० ११। २०। १७)

यह मनुष्य-शरीर समस्त शुभ फलोंकी प्राप्तिका मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार-सागरसे पार जानेके लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। शरण-ग्रहणमात्रसे ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवारका संचालन करने लगते हैं और स्मरणमात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमें इसे लक्ष्यकी ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होनेपर भी जो इस शरीरके द्वारा संसार-सागरसे पार नहीं हो जाता, वह तो अपने हाथों अपने आत्माका हनन—अधःपतन कर रहा है।

आत्माका कल्याण भगवन्नाम-स्मरणसे होता है। इसे प्रत्येक मानव चाहे गृहस्थी हो, चाहे ब्रह्मचारी हो, वानप्रस्थी हो या संन्यासी, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य या शूद्र कोई हो सभी भगवन्नाम-स्मरणद्वारा आत्म-कल्याण कर सकते हैं। उससे सभीका कल्याण हो सकता है।

भगवान्ने गीता (८। १४)-में भी अर्जुनसे कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

आत्म-कल्याणका भाव संसारसे मुक्ति पानेसे है। मुक्ति प्राप्त करनेमें मनुष्यमात्रका कल्याण है और अधिकार है। जो लोग इस प्रकार कहते हैं कि मुक्ति किसी वर्ण-विशेष या आश्रम-विशेष अथवा देश-काल-विशेषमें ही होती है, उनकी बातें न कभी सुननी चाहिये न माननी चाहिये। वे अपना सिद्धान्त अपने पास ही रखें। ऐसे झूठे बन्धनोंमें जकड़कर एवं सिद्धान्तोंको बनाकर वे अपना और मुक्तिका भी पतन करते हैं। इसलिये उन लोगोंके बन्धनमें नहीं आना चाहिये। ये सब झूठे बन्धन भगवान्के बनाये हुए नहीं हैं। ये तो कुछ लोगोंने स्वार्थरत होकर सिर्फ अपनी मान-प्रतिष्ठाके लिये बना दिये हैं। अस्तु, कुछ भी हो मुक्तिके लिये सभीका दायरा खुला है; फिर इस कलिकालमें तो भगवान्की उदारताकी सीमा ही नहीं है। इस प्रकारका मौका पाकर भी अगर हम लोग मुक्तिसे वंचित रह जाते हैं तो समझना चाहिये कि हमारा बड़ा भारी दुर्भाग्य है। किसी भी मनुष्यका अपनी आत्माका कल्याण होना कठिन बात नहीं है बहुत ही साधारण-सी बात है। मुक्तिका होना हमने कठिन मान लिया है, यह केवल मात्र हम लोगोंके दिलकी कमजोरी है, यह हानि करनेवाली बात है। इसलिये यह सिद्धान्त रखना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति—मुक्तिकी प्राप्ति करना मनुष्यके लिये कोई कठिन काम नहीं है। मनुष्य चाहे जैसा भी हो—पापी-से-पापी एवं मूर्ख-से-मूर्ख क्यों न हो उसका उद्धार बहुत ही शीघ्र—शीघ्र-से-शीघ्र हो सकता है। हम लोगोंको रुपया कमानेमें जितना परिश्रम करना पड़ता है, भगवान्की प्राप्ति करनेमें उस प्रकार उतना परिश्रम नहीं करना पड़ता, एक पैसा भी खर्चा नहीं करना पड़ता और समय भी बहुत कम लगता है। भगवान्की प्राप्ति न होनेपर हम लोग जो अज्ञानवश ऐसा मान बैठते हैं कि हम लोगोंपर भगवान्की दया नहीं है, भगवान्का हमपर कोप है यह तो भगवान्पर कलंकका आरोप करना है।

भगवान्की हम लोगोंपर बड़ी भारी दया है, भगवान्की दयाकी तो कोई सीमा ही नहीं है। भगवान्की बड़ी भारी दयाका ही यह परिणाम है कि जिससे आप लोगोंके लिये इस प्रकारके देश-काल-स्थान एवं बुद्धि प्रदान की है। फिर भी यदि आप भगवान्को कलंक लगाते हैं, उनको कोसते

हैं तो आपकी मरजी है। इतनेपर भी भगवान् हम लोगोंकी बातोंपर ध्यान नहीं देते, क्योंकि वे समझते हैं कि ये सब नादान हैं। माता-पितापर संतानद्वारा लांछन लगानेपर तो माता-पिता संतानको घरसे निकाल सकते हैं या उसका त्याग कर सकते हैं, परंतु भगवान् तो हम लोगोंको न तो घरसे ही निकालेंगे और न हम लोगोंपर कृपा करनी ही त्यागेंगे।

महात्मा और भगवान् इन लोगोंका यही नियम है कि वे लोगोंसे, चाहे कोई कैसा ही हो, सम्बन्ध जोड़ना जानते हैं तोड़ना नहीं जानते। परंतु यदि कोई स्वयं उनसे सम्बन्ध तोड़ना चाहे तो वे क्या करें। साधु, धर्मराज और ईश्वर—ये तीनों ही उच्च कोटिके होते हैं ये कभी भी किसीका अनिष्ट नहीं चाहते, सबका हित ही चाहते हैं। बालक चाहे जितना भी कुपात्र क्यों न हो, परंतु माँ-बाप कभी कुपात्र नहीं होते। माँ-बापमें तो कभी-कभी स्वार्थ-बुद्धि हो जानेके कारण दोष पाया भी जा सकता है, परंतु इनमें ये बातें नहीं पायी जा सकतीं।

सबसे बढ़कर बात यह है कि सब परमात्माका ही स्वरूप है। ऐसा समझकर सदा आनन्दमें मुग्ध होना चाहिये। जो भी कुछ है वह सब भगवान्का ही स्वरूप है **'वासुदेवः सर्वमिति'**—इस बातको भगवान्ने गीता (७। १९)-में बतलाया है। पूरा श्लोक इस प्रकार है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

इस श्लोकका भाव इस प्रकार है—'बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त जो पुरुष, 'सब कुछ वासुदेव ही हैं'—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।' इसलिये हम लोगोंको भी समझ लेना चाहिये कि यही हमारा अन्तिम जन्म है, इसके बाद हम लोगोंको और जन्म नहीं लेना पड़ेगा ऐसा विश्वास कर लेना चाहिये। क्योंकि विश्वास ही फलदायक होता है। इस प्रकारका विश्वास कर लेनेमें आप लोगोंका लगता ही क्या है? ऐसा विश्वास करनेपर हम लोगोंकी मुक्ति हो या न हो मान लेनेमें कोई नुकसान तो है ही नहीं।

एक पुरानी बात है। हम लोगोंके देश मारवाड़में राजपूत लोग थे। उन लोगोंको फतहपुरके नवाबने अपने पास बुलाया और उनसे कहा कि तुम सब लोग मुसलमान बन जाओ। उन लोगोंने मुसलमान बननेसे इनकार कर दिया। तब नवाबने राजपूतोंसे कहा—'यदि तुम लोग मुसलमान होना नहीं चाहते हो तो मत बनो, परंतु मर्दुमशुमारी (मनुष्य-गणना)-में तुम मुसलमानोंके साथ अपना नाम लिखवा दो। इतनी बात तुम हमारी मान लो। तुम लोगोंका जो धर्म है उसका तुम लोग उसी प्रकार पालन करो, उसमें किसी प्रकारकी रोक-टोक नहीं होगी।' वे बेचारे समझे कि मुसलमानोंकी लिस्टमें नाम लिखवा देनेमें हम लोगोंको आपत्ति ही क्या है? हम लोग राजपूत हिंदू-धर्मका पालन करेंगे। उन लोगोंने नवाबकी बात मान ली और अपना नाम मुसलमानोंकी लिस्टमें रखवा दिया। वे अपने धर्मका पालन भी करते रहे। अन्तमें कट्टर मुसलमान बन गये जो आज 'क्यामखानी' नामसे प्रसिद्ध हैं। थोड़े दिनों विवाह-शादी आदि तो अपनी परम्पराके अनुसार चले, बादमें वह भी धीरे-धीरे बंद होकर सब काम चौपट हो गया। मान लेनेका यह नतीजा है।

ऐसी ही बात गङ्गाजीकी शरणमें जानेकी है। गङ्गाजीकी शरणमें जानेपर बहुत शीघ्र उद्धार हो सकता है। गङ्गाजीमें स्नान करनेसे पापोंका नाश हो जाता है। और मनुष्योंकी मुक्ति हो जाती है ऐसा माना जाता है। हम लोग गङ्गाजीमें स्नान करते हैं, गङ्गाजल-पान करते ही हैं इस बातमें तो कोई कमी है नहीं, कमी है केवल न माननेकी। यदि मान लें कि गङ्गा-स्नानसे मुक्ति हो जाती है तो निश्चय ही मुक्ति हो सकती है।

परमात्माको प्राप्त करनेके लिये दो प्रकारके साधन बतलाये गये—

पहला साधन है संसारमें सब लोगोंमें परमात्माका स्वरूप समझना और दूसरा साधन है इसी जन्मको अन्तिम जन्म समझ लेना।

८४ लाख योनियोंके बाद जो यह मनुष्य-शरीर हमें मिला है इसे ही आखिरी जन्म समझना चाहिये। इस मनुष्य-जन्मको पाकर भी यदि हम लोगोंका कल्याण नहीं हुआ तो बड़े शर्मकी बात है। हम लोग यदि भगवान्के

लिये मनुष्य-जन्मके योग्य नहीं होते तो भगवान् हम लोगोंको क्यों मनुष्य-जन्म देते? भगवान् चाहते तो हम लोगोंको बंदर, गधा, कुत्ता, तिर्यक्—किसी भी योनिमें जन्म दे सकते थे। उन्हें हम लोगोंको जन्म देनेमें स्वतन्त्रता थी। भगवान् हम लोगोंको जैसा शरीर देते तो उसमें हम लोगोंको क्या कोई एतराज़ होता? भगवान्ने अपनी इच्छासे हम लोगोंको जो भी जन्म दिया वह हम लोग बन गये। यदि जन्म लेनेमें सबकी इच्छा अथवा स्वतन्त्रता होती तो फिर सभी लोग मनुष्य-जन्म ही लेना पसंद करते। भले ही मनुष्य-जन्म लेकर भूखों ही मरना पड़ता; यह गधा, कुत्तों आदिकी योनिको तो कोई भी पसंद नहीं करता।

८४ लाख योनियोंमें केवल मनुष्य-शरीरसे ही भगवान्की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये इस मनुष्य-शरीरमें ही सब जन्मोंका अन्तिम जन्म है। 'यह मनुष्य-जन्म ही आगेके बहुतसे जन्मोंका अन्त करनेवाला है'—ऐसा विश्वास कर लेना चाहिये। मान लेनेपर कल्याण हो सकता है, इसमें किसी प्रकारकी शंका होनी नहीं चाहिये।

जो कुछ हो रहा है सब भगवान्की लीला हो रही है। आप लोग सिनेमा-थियेटर नाटक आदिमें जाकर, जो लीला देखा करते हैं, वह लीला तो मनुष्योंकी बनायी गयी बनावटी लीला है। परंतु यह सब जो कुछ भगवान्की इच्छासे हो रहा है यह मनुष्यकी बनायी हुई लीला नहीं है। यह सब भगवान्की लीला है, इसको असली लीला समझकर आनन्द-मग्न होना चाहिये। इस प्रकारका भाव होनेपर हम लोगोंमें राग-द्वेषका अभाव हो जायगा और राग-द्वेष न रहनेपर काम एवं क्रोधका अपने-आप ही नाश हो जायगा। क्योंकि राग-द्वेषसे ही काम और क्रोधकी उत्पत्ति होती है। इसलिये सबको भगवान्की माया समझ लेनेपर राग-द्वेषका अभाव होकर उनसे काम एवं क्रोधका नाश ही होता है इतनी-सी ही बात नहीं है बल्कि इसके नाश होनेके साथ-साथ हम लोगोंके मनमें जो ईर्ष्या, भय, वैर आदि होते हैं उनकी भी साथ-ही-साथ समाप्ति हो जाती है। इसलिये यह जो कुछ भी चेष्टा होती है सब भगवान्की ही लीला है, ऐसा मानना और भाव रखना बहुत ही दामी चीज है। इसके अतिरिक्त यदि आपने मान लिया कि यह सब भगवान्की लीला हो रही है तो ऐसा मान लेनेपर आप लोगोंको इस प्रकारकी सुख-शान्ति एवं आनन्दकी प्राप्ति होगी जो आजतक आप लोगोंको निश्चय ही जन्म भरमें नहीं मिली है। हम आपसे निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि इस प्रकार सबमें सब प्रकारकी चेष्टाको भगवान्की लीला समझ लेनेपर आप लोगोंको वह शान्ति मिलेगी जो आजतक नहीं मिली है। यह शान्ति तबतक मिलती रहेगी जबतक आप सब चेष्टाओंको भगवान्की लीला मानते रहेंगे। इस प्रकार ये तीन बातें हो गयीं—

१-यह जो कुछ भी है सो परमात्माका स्वरूप है।

२-यह मनुष्य-जन्म सब जन्मोंका आखिरी जन्म है। इस जन्मके बाद हम लोगोंको दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ेगा। यह मानव-शरीर हम लोगोंको भगवान्की दयासे मिला है। जब भगवान्की ही हम लोगोंपर इतनी भारी दया है तो क्या तब भी हमारा कल्याण होनेमें किसी प्रकारका संदेह है? ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये।

३-'जो कुछ भी चेष्टाएँ हो रही हैं सब भगवान्की लीला हो रही है'—ऐसा समझकर आप लोग लीला देखते रहें।

—इस प्रकारसे ये तीन बातें बतलायी गयी हैं जो केवल माननेसे कल्याण कर देनेवाली हैं।

अब तीन बातें ऐसी बतलायी जायँगी जिन्हें मानकर करना चाहिये, इसमें परिश्रम बहुत थोड़ा है परंतु लाभ अधिक है। बहुत कम परिश्रम होनेके साथ-साथ उसमें लाभका कोई ठिकाना नहीं है, ऐसी बात बतलायी जाती है।

आपके घर या बाहर जो कोई भी आपसे बड़ा हो, किसी प्रकारसे भी—अवस्था, ज्ञान, आचरण, पद एवं वर्ण और आश्रम या किसी भी प्रकारसे बड़ा हो उनको प्रातः-काल उठनेके बाद और स्नान करनेके अनन्तर नम्रतापूर्वक उनके पास जाकर नमस्कार कर लेना चाहिये। यह सब एक मिनिटका काम है। कोई कठिन काम नहीं है बस नमस्कार ही तो करना है, परिश्रम इसमें क्या लगता है। अपनेसे बड़ोंको नित्यप्रति निष्कामभावसे नमस्कार करनेसे अहंकारका नाश होता है। अहंकारका नाश होनेके साथ परस्परमें जो घरमें लड़ाई-झगड़ा एवं वैमनस्य आदि रहता है वह भी शान्त हो जाता है। क्योंकि इस परिपाटीसे प्रायः एक-

दूसरेकी लड़ाई मिट जाती है, खुनस मिट जाती है। नमस्कार करना क्षमा करनेका एक माध्यम हो जाता है। जब आप लोग रोज ही नमस्कार करेंगे तब आपसे किसी प्रकार कसूर नहीं होगा। जब कसूर ही नहीं होगा तब माफी करने-न-करनेका तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। इस प्रकार नित्य नमस्कार करनेसे आप लोगोंसे भूल होगी नहीं और इससे घरमें लड़ाई-झगड़े नहीं होंगे। ये सब घरसे बिदा हो जायँगे। अगर आप पूज्योंको साष्टाङ्ग नमस्कार करेंगे, तब बड़ोंके आशीर्वादके कारण आपके बल, आयु, कीर्ति एवं विद्याकी वृद्धि होगी। यह आप लोग प्रत्यक्ष देखते होंगे कि इस प्रकारसे प्रणाम—नमस्कार करनेवालेके लिये हम लोग क्या कहते हैं? यह लड़का बड़ा अच्छा है, बड़ा ही विनयी एवं बड़ा सुशील है और बड़े ही सुन्दर स्वभावका है, अपने माँ, बाप, गुरुजनों एवं बड़ोंको नित्य नमस्कार करता है। इस प्रकार नमस्कार करनेसे आपको प्रत्यक्षमें यशकी प्राप्ति होती है। नमस्कार करनेसे माता-पिता, गुरुजनोंको संतोष होता है जिससे वे आशीर्वाद देते हैं जिसके फलस्वरूप आपके बल-आयु-विद्या एवं यशकी वृद्धि होती है। नमस्कार करना धर्मका एक खास अंग है। भगवान् भी गीता (१७। १४)-में इस बातको साफ-साफ कहते हैं—**'देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्'**। देवता, ब्राह्मण, गुरु एवं प्राज्ञ—इनका पूजन करना, नमस्कार करना, सेवा करना कितनी उच्च कोटिकी चीज है। लोगोंको अपनेसे पूज्योंको नमस्कार करनेमें जो व्यर्थमें पाप, भय, शंका-संकोच होता है इनको मनसे सर्वथा हटा देना चाहिये। पूज्योंको प्रणाम करनेमें हम लोगोंको जो लज्जा-संकोच—शर्म-सी प्रतीत होती है वह नरकमें डालनेवाली चीज है। इसलिये इस शर्मको आग लगा देनी चाहिये। अच्छे कामोंको करनेमें कभी भूलकर भी संकोच-शर्म नहीं करना चाहिये। शर्म तो झूठ-कपट-चोरी-व्यभिचार करनेमें तथा मांस-मदिराके सेवनमें और दंभ-पाखण्ड—इन सब अवगुणों-दुर्गुणों-दुराचारोंके आचरण करनेमें करनी चाहिये। ये सब शर्म करनेके स्थान हैं। श्रेष्ठ कामोंमें—पूज्योंको नमस्कार करने आदिमें तथा कल्याण करनेकी जो चीजें हैं उनमें शर्म करना नरकमें डालनेवाली चीज है। जैसे उत्तम कर्म करने—गायत्री-जप एवं संध्या करनेकी इच्छा तो होती है परंतु संकोच-शर्म लगती है कि देखनेवाले क्या कहेंगे? इसी प्रकार दुःखी-दीन-अनाथोंकी सेवा करनेमें भी शर्म लगा करती है, बड़ोंको नमस्कार करनेमें भी शर्म लगती है। अच्छे कामोंमें शर्म लगनेसे अच्छे कामोंके करनेमें व्यवधान पड़ जाता है, जो कल्याण करनेमें आफत बनकर नरकमें ले जानेका कार्य करती है। इसे त्याग देना चाहिये।

किसीसे भी जब आपकी भेंट हो तब उससे हँसकर बोलना चाहिये। उनसे बातचीत करते समय उनको संतोष करानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह बहुत दामी चीज है। इसमें भी किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है।

जिस कामको करनेसे किसीकी आत्माको दुःख पहुँचे उस कामको कभी नहीं करना चाहिये। इसमें भी कोई परिश्रम नहीं है। इससे तो परिश्रम करनेका ही त्याग हो जाता है, जो उस कामके करनेमें परिश्रम करना पड़ता उस कामको न करनेसे परिश्रम नहीं करना पड़ा और समयकी भी बचत हो गयी।

इसी प्रकार जितने सांसारिक भोग्य पदार्थ हैं उन सभी सांसारिक भोगोंका त्याग कर डालना चाहिये। उनका त्याग करनेमें भी किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है, बल्कि उसमें भी परिश्रमका त्याग ही है। वस्तुतः भोगोंको भोगनेमें ही परिश्रमका काम है उनको त्याग देनेमें किसी प्रकारके परिश्रमका काम नहीं है। उनको त्यागनेमें क्या परिश्रम रखा है, बस त्याग दो। भोगोंको भोगनेमें ही—करनेमें ही परिश्रम है। यदि आप कोई भी काम करते हैं और छोड़ दें तो आपका परिश्रम-मेहनतका काम खतम हुआ या बढ़ा? परिश्रम तो सोलहों आने खत्म हो गया न? क्योंकि संसारके जितने भी प्रकारके भोगके साधन हैं, उनकी सिद्धि बिना आशा किये नहीं हो सकती। आशामें परिश्रम एवं उसके साथ-साथ छल-कपट आदि पाप-कर्म भी करने पड़ते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१८। ४८)-में अर्जुनसे कहा कि अर्जुन! संसारके सभी आरम्भ आगमें धूएँकी तरह दोषसे परिपूर्ण हैं—पापसे परिपूर्ण हैं—

सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥

—इसलिये इन सब प्रकारके कार्योंका त्याग करनेके

साथ-साथ परिश्रम घटनेके साथ-साथ ही उन कर्मोंसे होनेवाले पाप-कर्म भी घट जाते हैं। साधु लोगोंको एवं संन्यासाश्रममें यह आदेश दिया जाता है कि उन्हें सभी प्रारम्भोंका स्वरूपतः त्याग कर देना चाहिये। तात्पर्य यह कि सभी प्रारम्भोंका बाहर और भीतरसे त्याग कर देना चाहिये। यदि कोई भीतरसे उनका त्याग करके बाहरसे उन्हें करते भी हैं तो भी उसे अन्तमें त्यागनेमें तकलीफ नहीं होगी, परंतु यदि मनसे त्याग नहीं किया है और बाहरसे दिखाऊ त्याग किया है तो उसमें तो कठिनता ही है। इसलिये बाहर एवं भीतरसे कर्मोंको त्याग कर देना ही वास्तवमें उच्च कोटिका त्याग है। गृहस्थाश्रमके लिये बाहरी कर्मोंका त्याग करना शास्त्रानुसार शास्त्रसम्मत नहीं है। बाहर एवं भीतरके कर्मोंका त्याग तो साधुओंके लिये बतलाया गया है। साधुके लिये बतलाया गया है कि उसे कैसा बनना चाहिये।

साधुको नेत्रोंसे अंधेकी तरह, कानोंसे बहरेकी तरह, हाथोंसे टूटे हुए हाथकी तरह, पैरोंसे पंगुकी तरह, वाणीसे गूँगेकी तरह होना चाहिये। इसका मतलब यह है कि साधुओंके लिये सभी आरम्भोंका त्याग करनेकी बात कही गयी है। कानसे बहरेकी तरह बननेका भाव है कि साधुको भगवत्-चर्चाके सिवाय और कोई दूसरी बात सुननी ही नहीं चाहिये। दुनिया चाहे जो कुछ भी कहती रहे।

श्रीजडभरतजी महाराज अपने पूर्वजन्मकी बातें जानते थे। वे अपने गृहस्थाश्रममें रहते हुए, परिश्रम करते हुए भी उन सब कर्मोंसे वस्तुतः वे इतने उपराम थे कि जडकी तरह हो गये थे। इसलिये उनका नाम जडभरत हो गया। उनके सभी आचरण उपराम-जड़की तरह होते थे। घरवालोंने जडभरतको विद्या पढ़ानेकी कोशिश की। उनसे कहा जाता कि बोलो 'क ख ग घ ङ' तो उनके कहनेसे वे भी बोल देते 'क ख ग घ ङ'। दूसरे दिन जब पढ़ाईका क्रम आगे बढ़ानेकी बात आती तब पूछा जाता कि कलका पाठ क्या याद हुआ? जडभरत चुप रहते। फिर पूछा जाता क्या कलकी बात—कलका पाठ सब भूल गये? इसी प्रकार प्रतिदिन पढ़ाते 'क ख ग घ ङ' और प्रतिदिन पिछला पाठ पूछते, परंतु सब सफाचट। घरवालोंने समझ लिया कि जब इतना अधिक परिश्रम करनेके बाद भी यह पूरा वर्णमाला नहीं सीख सका तब यह क्या पढ़ेगा? घरवालोंने तंग आकर जडभरतको पढ़ानेकी चेष्टा ही छोड़ दी। घरवालोंने सोचा कि यह पढ़ाई-लिखाई तो करेगा ही नहीं अब इससे खेतीका काम करवाना चाहिये। उन्हें खेतके काममें लगाये रखनेके लिये उन्होंने निश्चय किया। जडभरत खेतमें जाते और खेतमें ही बैठे रहते। उन्हें किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं, जडभरत जो ठहरे। जडभरतकी यह स्थिति देख घरवालोंने कहा कि अगर तुमसे और कुछ नहीं हो सकता तो खेतमें ही रहा करो और वहाँ जो अपने खेतमें गाय-भैंस आदि पशु चरने आवें तो उन्हें लाठी लेकर अपने खेतमेंसे निकालकर किसी दूसरेके खेतमें खदेड़ दिया करो।

एक ओर जडभरतका खेत था और उसकी बगलमें दूसरोंका खेत। पशु आदि जब चरने आते तो जडभरत उनको दूसरेके खेतमें न खदेड़कर अपने ही खेतकी ओर खदेड़ दिया करते। दूसरे दिन घरवालोंने जाकर देखा कि अपने खेतमें सुखसे गाय-भैंस इकट्ठे हैं और सारे खेत साफ कर रहे हैं। घरवालोंने जडभरतसे कहा कि तुमसे कहा गया था कि चरनेके लिये आनेवाले पशुओंको दूसरेके खेतमें कर देना, इन्हें अपने खेतमें क्यों घुसा रखा है? जडभरतने कहा कि 'आपने यह कहा था कि यह हाथमें लाठी रखो और पशुओंको खदेड़ दिया करो', मैंने पशुओंको खदेड़ दिया। तब घरवालोंने कहा कि 'मूर्ख, यह तो अपना खेत है, तुमको दूसरेके खेतमें खदेड़नेके लिये कहा गया था।' यह सुनकर जडभरत हँसने लगते और घरवालोंसे पूछते कि 'अपना और दूसरेका क्या चीज होती है?' घरवालोंने जडभरतसे कहा—मूर्ख, तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है कि यह अपना खेत है और यह दूसरेका—परायेका। [इस प्रकारके ज्ञानमें ही तो खराबी थी।] तब घरवालोंने जडभरतसे खेतका काम भी छुड़ा दिया। इसके बाद घरवालोंने जडभरतको आदेश दिया कि तुम खेतमें क्यारी बनाओ। जडभरतने कहा—क्यारी क्या? घरवालोंने कहा—मूर्ख, क्यारी बनायी जाती है, क्या तुम क्यारी नहीं समझते। देखो, वह सामने जो ऊँची-सी जगह है, उसे फावड़ा लेकर खोदकर उसे गढ़ेमें डालो और उसे चारों तरफसे बराबर

करो। जडभरत सोचने लगे कि ये क्या बोलते हैं? तब घरवालोंने कहा—मूर्ख समझा नहीं? देख, क्यारी ऐसे बनती है—दो-चार परात मिट्टी उठाकर उसकी क्यारी बनाकर बतलाया कि इस प्रकारसे क्यारी बनती है। जडभरतके 'ठीक है'—कहनेपर घरवाले जडभरतको क्यारी बनानेकी शिक्षा देकर चले गये। पीछेसे जडभरतने एक जगहसे मिट्टी खोदकर दूसरी जगह क्यारी नहीं बनाकर उसे खूब ऊँचा कर दिया। दूसरा काम बढ़ा दिया। दूसरे दिन घरवाले खेतमें आये और जडभरतका काम देखे तो बोले—रे मूर्ख, तुमने यह क्या कर दिया। मूर्ख, तुमको तो क्यारी बनानेके लिये कहा गया था। क्या क्यारी इस प्रकार बनती है? जब इस जगहपर मिट्टी पड़नेके बाद समतल हो चुकी तब तुमको मिट्टी डालनेका काम बंद कर देना चाहिये था। ऐसा करके तो तुमने दूना काम बढ़ा दिया। इसे अब समतल कौन करेगा। समझा नहीं, मूर्ख कहींका। [इस बातको समझे कौन! किसीको समझना हो तो समझे, न समझनेवालेको समझाना ही नहीं है।] आखिर घरवालोंने तंग आकर कह दिया कि तुम किसी भी प्रकारका काम करने लायक नहीं हो। अब कोई भी काम मत करो, केवल बैठे रहो। जडभरतने कहा—बहुत ठीक। वे खेतमें बैठे रहते और उनको चाहिये ही क्या, खूब परमात्माका ध्यान करते और ध्यानमें मग्न रहा करते। आठ पहरोंमेंसे कभी एक पहर घरमें आ जाया करते और घरवाले उसे भोजन करा दिया करते।

एक दिनकी बात है, जडभरतको ध्यानावस्थामें कुछ विलम्ब हो गया और वे भोजनके लिये घरपर देरीसे पहुँचे। उनकी भाभीने देखा कि सुंडमसुंड-मोटा-तगड़ा जडभरत सामने खड़ा है। जडभरतके घरपर आनेमें देर होनेपर उनकी भाभीने उनके भोजनका खयाल छोड़ दिया था, पर जब उन्होंने देखा कि जडभरत सामने है तब बचा हुआ भोजन जो खानेसे बचनेपर रख छोड़ा था—जिसे जूठा कहा जाता है, उसे लाकर जडभरतकी थालीमें उसमेंसे आधा परोस दिया। 'बहुत ठीक है' कहकर जडभरतने खूब प्रेमसे प्रसाद पा लिया। उनकी भाभी भी मन-ही-मन सोचने लगी कि यह भी कोई पशु ही है जो इस प्रकारका भी भोजन नहीं छोड़ता। इसके बाद जडभरतके भोजन कर लेनेपर जो थोड़ा खाना बच गया था, उसे नाँदमें डाल दिया, जिससे अमृतके समान सुगंध आने लगी। जडभरतका भाई जब घर आया और उसे भी वह सुगंध मालूम होने लगी तब उसने अपनी स्त्रीसे पूछा कि क्या बात है, आज यह सुगंध कैसी आ रही है? ऐसे चावल तो कभी नहीं बने थे। उसकी स्त्रीने कहा कि यह सुगंध चावलोंमेंसे ही आ रही है। फिर स्त्रीसे पूछा—चावल किसने बनाये थे। स्त्रीने कहा कि चावल तो मैंने ही बनाये थे, पर पता नहीं क्यों आज चावल बहुत ही स्वादिष्ट बने हैं? पतिने कहा—ऐसे ही स्वादिष्ट चावल रोज बनाया करो। स्त्रीने सोचा क्या हरज है, मैं तो इस प्रकारके चावल बनानेकी विधि सीख ही गयी हूँ। इस प्रकारके चावल बनानेमें क्या कठिनाई है? उसने दूसरे दिन सब चावलोंको नाँदमें डाल दिया और पकानेके लिये उसमेंसे निकालकर पकाया। आधे घंटेके बाद उसे थालीमें परसकर अपने पतिके खानेके लिये लायी। पतिने चावल खाते ही कहा—ये चावल क्या बने हैं इसमें तो अजीब-सी दुर्गन्ध आ रही है। इसमें तो किसी प्रकारका स्वाद ही नहीं है। जैसे चावल रोज बनते हैं उनसे भी खराब है, कलका-सा स्वाद तो है ही नहीं। उनकी स्त्रीने कहा—मैंने तो ये चावल जैसे कल बनाये थे वैसे ही आज भी बनाये। न मालूम क्यों कल स्वादिष्ट बन गये और आज क्यों नहीं बने। [उनको क्या मालूम कि इन चावलोंको स्वादिष्ट बनानेवाला कौन है। श्रद्धा तो थी नहीं इनमें।] इस प्रकार जडभरत ममता-अहंता-रागरहित होकर विचरण किया करते थे।

साधुको कानोंसे बहरेकी तरह रहना चाहिये, इसका तात्पर्य है कि कानोंसे केवल मात्र परमात्म-विषयक बातोंका ही श्रवण करना चाहिये और दूसरी संसार-विषयक बातें सुने ही नहीं, चाहे जो भी कहा करे।

साधुओंको नेत्रोंसे अंधेकी तरह व्यवहार करनेका तात्पर्य है कि जब रातमें चले, तब नेत्रोंसे थोड़ा दूर तकका रास्ता केवल देख लेना चाहिये और फिजूल इधर-उधर नहीं देखना चाहिये। नेत्रोंसे केवल महापुरुषोंका दर्शन करना चाहिये एवं मन्दिरोंमें जाकर देवतादिके दर्शन तथा सत्-शास्त्रोंका ही अध्ययन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त

नेत्रोंको अन्य प्रकारका परिश्रम नहीं देना चाहिये।

हाथोंसे लूलेकी तरह व्यवहार करनेका तात्पर्य है कि हाथोंसे केवल परोपकार एवं भगवान्‌की सेवा करे, इसके सिवाय और अन्य प्रकारका परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं है।

पैरोंसे लँगड़ेकी तरह व्यवहार करनेका तात्पर्य है कि केवल महापुरुषकी सत्संगतिमें जाय तथा तीर्थादि देव-मन्दिरोंके दर्शनादि करने जाय, पैरोंसे बेकार परिश्रम नहीं करे।

वाणीसे गूँगेकी तरह व्यवहार करनेका तात्पर्य है कि वाणीसे केवल भगवत्-विषयक वार्ता ही करनी चाहिये। इसके सिवाय दूसरी बातें करनी ही नहीं चाहिये।

अब यह पूछा जाता है कि जिस प्रकार प्राचीन कालमें साधु-महात्माओं एवं संन्यासियोंके लिये इस प्रकारकी शिक्षा दी जाती थी, वैसा यदि अब सारी कर्मेन्द्रियोंसे केवल भगवान्‌के ही निमित्त काम किये जायँ तो फिर मनुष्यको भोजन कहाँसे मिले? शरीर-निर्वाह किस तरह हो?

इसके लिये बतलाया गया है कि अजगर-वृत्तिसे काम चलाना चाहिये। जैसे अजगरको अपने स्थानपर ही जो कुछ मिल जाता है वह उसीसे काम चलाता है, उसी प्रकार साधु-संन्यासियोंको भी अपने स्थानपर जो कुछ मिल जाय, उसीसे काम चला लेना चाहिये। फिर भी पूछा जाता है कि इस प्रकार अगर अपने स्थानपर भोजन प्राप्त न हो तो फिर किस प्रकारसे निर्वाह करना चाहिये? तो खयाल करना चाहिये कि 'खाना कैसे मिलेगा' यह चिन्ता तो आपको अभी लगी है, पहले तो नहीं थी न? जब आप अपनी माताके पेटमें थे, उस समय क्या आपको पेटकी चिन्ता थी? उस समय आपके पास भोजन कौन पहुँचाता था? और जब आप पैदा हुए थे तब आपकी माताके स्तनोंमें भी दूधका इंतजाम किसने किया था? आपने अगर यह सब इंतजाम कभी भी नहीं किया तो जिसने यह सब इंतजाम किया था अब भी आपको उसीके ऊपर भरोसा रखना चाहिये। क्योंकि उसका नाम विश्वम्भर है। आप जरा विचार करके देखें—जो जलचर-थलचर एवं पशु-पक्षी, कीट-पतंग हैं, उनके भी किसी प्रकारकी खेती-दूकान-व्यवसाय-दलाली या अन्य किसी प्रकारका रोजगार है क्या? ये भी जीवित रहते हैं या नहीं? इसी प्रकार अपने जीवनको प्रारब्ध—भगवान्‌के अधीन छोड़ देना चाहिये। जब भगवान् विश्वम्भर सबका पालन-पोषण स्वयं करते हैं तब किसी प्रकारकी चिन्ता करनी ही नहीं चाहिये। इस प्रकारकी चिन्ता भीतरसे त्याग देनी चाहिये।

दान दो

भूखे जनको अन्न-दान दो, प्यासेको दो जलका दान।
वस्त्रहीनको वस्त्र-दान दो, मानहीनको सच्चा मान॥
भय-विह्वलको अभय-दान दो, शरणहीनको आश्रय-दान।
शोक-विकलको शान्ति-दान दो, आतुर जनको सेवा-दान॥
दुःख-पतितको धैर्य-दान दो, रोगी जनको औषध-दान।
पथ भूलेको मार्ग-दान दो, दो निराशको आशा-दान॥
ज्ञानहीनको ज्ञान-दान दो, संशयालुको श्रद्धा-दान।
धर्महीनको धर्म-दान दो, नास्तिकको ईश्वरका ज्ञान॥
जो, जिसको, जब आवश्यक हो, करो तभी उसको वह दान।
जो तुम कर सकते हो; पर मत करो कभी उसपर अहसान॥
मत समझो दाता अपनेको, करो न कुछ भी तुम अभिमान।
सविनय करो समर्पण प्रभुको, प्रभुकी वस्तु सहित सम्मान॥

राम-नाम तारक मन्त्र है

(श्रीहिमांशुशेखरजी)

राम-नामकी उपादेयता एक अनुभूत सत्य है। यह समस्त पातकोंका नाशक तथा महामङ्गलकारी है। राम-नामका जप करके अगणित व्यक्तियोंने अपना एवं दूसरोंका कल्याण किया है। इस शब्द-ब्रह्मकी अनन्त शक्तिके सामने कोई प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

जब महर्षि वाल्मीकिने मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे जिज्ञासावश पूछा कि 'इस समय संसारमें समस्त प्राणियोंका हित करनेवाला, गुणवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, वीर्यशाली, दृढव्रत, विद्वान्, आत्मवान्, क्रोधजयी, दृढप्रतिज्ञ, सदाचारी, किसीकी भी निन्दा न करनेवाला तथा संग्राममें कुपित होनेपर जिससे देवता भी भयभीत हो उठते हैं—ऐसा एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है?' तब उनके इस प्रश्नके उत्तरमें नारदजीने श्रीरामका नाम लिया था। उनके लोकोत्तर शीलका निरूपण करते हुए उन्होंने कहा था कि श्रीराम गम्भीरतामें महासागर तथा धैर्यमें हिमालय पर्वतके समान हैं—

समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥

(वा०रा० १। १। १७)

राम-नामकी इस अलौकिक शक्तिका एकमात्र कारण है रामकी परब्रह्मता। राम धर्मके मूर्तिमान् रूप हैं—'**रामो विग्रहवान् धर्मः**' (वा०रा० ३। ३७। १३)। कुछ लोग रामको ईश्वर नहीं मानते, इसलिये राम-नाममें उनकी श्रद्धा नहीं है। शास्त्रोंमें इस बातके अनेक प्रमाण हैं कि संसारके कल्याणके लिये परमात्मा समय-समयपर मानव-रूपमें अवतरित होकर सज्जनोंकी रक्षा तथा दुष्टोंका संहार करते हैं।

श्रीरामके ईश्वरत्वका उल्लेख एक नहीं, अनेक प्रामाणिक शास्त्रोंमें सर्वत्र द्रष्टव्य है। वाल्मीकीयरामायणके बालकाण्ड तथा अन्य स्थलोंमें इस सत्यको उद्घाटित किया गया है कि देवाधिदेव भगवान् विष्णुने राक्षसोंके समूल विनाशके लिये महाराज दशरथके यहाँ अवतार लिया था।

सुमेरु-पर्वतके शिखरपर ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान सनक, सनन्दन, सनत्कुमार तथा सनातन नामक ऋषियोंके समक्ष देवर्षि नारदने श्रीरामको नारायणके रूपमें सम्बोधित करते हुए निम्नलिखित शब्दोंमें उनकी वन्दना की थी—

यो दैत्यहन्ता नरकान्तकश्च
भुजाग्रमात्रेण च धर्मगोप्ता॥
भूभारसंघातविनोदकामं
नमामि देवं रघुवंशदीपम्।

(वा०रा० माहात्म्य २। १७-१८)

अर्थात् 'जो राक्षसोंका संहार तथा नारकीय दुःखोंका अन्त करनेवाले हैं, जो अपनी भुजाग्रमात्रसे धर्मकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, पृथ्वीके भारका विनाश जिनका मनोरञ्जनमात्र है और जो उस मनोरञ्जनकी सदा कामना करते हैं, उन रघुकुलदीपक श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ।'

राम-नामकी शक्तियाँ

महाराज दशरथके पावन गृहमें जब समस्त लोकोंके पालक भगवान् विष्णु अवतरित हुए तो उनके जन्मके ग्यारहवें दिन गुरु वसिष्ठने उनका नाम 'राम' रखा। शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर करपात्रीजी महाराजने यह सिद्ध किया है कि जैसे छोटेसे बीजमें विशाल वटवृक्ष छिपा रहता है, वैसे ही सम्पूर्ण चराचर जगत् 'राम'-नामक महामन्त्रमें समाविष्ट है। शक्तिके तीन प्रकार बतलाये गये हैं—उत्पादिनी, पालिनी तथा संहारिणी। ये त्रिविध शक्तियाँ राम-नामकी आश्रयभूता तथा 'रेफ' अर्थात् रकार समन्विता हैं—

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥
रेफारूढा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च।

राम-नामको ओंकारकी भाँति ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रात्मक भी माना गया है। कहा जाता है कि राम-नामका 'रेफ' अर्थात् 'र' अक्षर अग्नि 'म' अक्षर विष्णु तथा दोनोंके मध्य स्थित आकार ब्रह्माका प्रतीक है—

रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णुः सोमो म उच्यते।
आवयोर्मध्ये ब्रह्मा रविराकार उच्यते॥

भयका नाशक

राम-नाम भय दूर करता है। श्रद्धा और विश्वासके साथ राम-नामका जप करनेवालोंके दु:स्वप्न सुस्वप्नमें बदल जाते हैं। प्रह्लादकी कथा विश्व-विश्रुत है। हिरण्यकशिपुने उन्हें बहुत सताया था, परंतु प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं हुआ; क्योंकि उन्होंने श्रीहरिके पावन नामका अवलम्बन ग्रहण कर रखा था। भक्त प्रह्लादने स्पष्ट शब्दोंमें इस महान् सत्यको उद्घाटित करते हुए अपने पिता हिरण्यकशिपुसे कहा—

रामनामजपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्रसंनिधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

'राम-नामका जप करनेवालोंको भय कहाँ? राम-नामका जप समस्त तापोंकी निवृत्तिका एकमात्र औषध है। हे तात! देखिये, मेरे शरीरके संनिकट प्रज्वलित अग्नि भी मुझे शीतल जलके समान अनुभूत हो रही है।'

उलटा जप भी कल्याणप्रद

'राम' यह परमात्माका नाम है और सब लोगोंको इसके जपका समान अधिकार है। श्रीचैतन्यमहाप्रभु कहते हैं कि *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'*—'इस महामन्त्रको जो कोई भी प्रफुल्लित होकर सुनेगा अथवा उसका गान करेगा, उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे।'

आदिकवि वाल्मीकि पहले रत्नाकर डाकूके नामसे कुख्यात थे। जनश्रुति है कि वे राहगीरोंको लूटकर अपनी आजीविका चलाया करते थे। एक दिन ईश्वरकी प्रेरणासे उनमें सद्बुद्धिका उदय हुआ और उन्होंने सत्संग करनेका दृढ़ निश्चय किया। वे राम-नामके जपका प्रयास करने लगे, परंतु जन्म-जन्मान्तरोंके बद्धमूल कुसंस्कारोंके कारण उनकी जिह्वासे राम-नामका शुद्ध उच्चारण ही नहीं हो पाता था। तब उन्होंने प्रतिलोम-क्रमसे राम-नामका जप करना आरम्भ किया। 'मरा'-'मरा' की अविच्छिन्न विपरीत नाम-ध्वनिसे ही वातावरण पवित्र हो गया। राम-नाममें अविचल श्रद्धा तथा विश्वासके कारण वाल्मीकि दस्युवृत्तिसे मुक्त होकर महान् संत बन गये और उन्होंने विश्वके आदिकाव्य 'रामायण' के प्रणयनका श्रेय प्राप्त किया, वे ही आदिकवि कहलाये।

रामसे बड़ा रामका नाम

'राम' शब्दका अभिप्रेत अर्थ शरीरधारी जीव नहीं, प्रत्युत सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और परम कृपालु ईश्वर है। ईश्वर प्रत्येक प्राणीके अंदर समानरूपसे विराजमान हैं। 'राम' शब्दसे उन अनन्त ज्ञान तथा शक्तिसे सम्पन्न परमात्माका ही प्रत्यभिज्ञान होता है। इसीलिये राम-नामको रामसे भी बड़ा माना गया है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
(रा०च०मा० १। २३। ५)

और भी—

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥
(रा०च०मा० १। २३)

ब्रह्मरूप रामने तो एक तपस्वीकी पाषाण बनी नारीका उद्धार किया था, परंतु राम-नामने तो अगणित दुर्जनोंको सद्बुद्धि प्रदानकर उनका कल्याण किया है—

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
(रा०च०मा० १। २४। ३)

इसमें संशय नहीं कि राम परब्रह्मके अवतार हैं, परंतु उनके वरदायक नामकी महिमा उनसे भी बढ़कर है—

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥
(रा०च०मा० १। २५)

कराल-कलिकालरूपी अथाह समुद्रको पार करनेके लिये राम-नाम एक सुदृढ़ जहाज है। रामके नामको कल्पतरु कहा गया है जो लोक-परलोक दोनोंके लिये फलदायक है, आवश्यकता है श्रद्धा तथा विश्वासके साथ राम-नाम परायण होनेकी ।

महापापीके उद्धारका परम साधन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्रश्न—'मैं बड़ा ही पापी हूँ। जीवनभर मैंने पाप किये हैं। परधन-हरण, व्यभिचार, हिंसा, ब्राह्मण-साधुओंका अपमान, माता-पिताको कष्ट देना और सबसे वैर करना आदि कोई भी ऐसा पाप नहीं, जो मैंने बड़े चावसे चित्त लगाकर न किया हो। इस प्रकारके पाप ही मेरे जीवनके मुख्य काम रहे हैं। मैं ऊपरसे बड़ा भक्त बना रहता था, लोगोंको उपदेश करता था, पर अंदर-ही-अंदर पापोंकी बात सोचता और करता था। अब भी पापोंसे छूट नहीं पाया हूँ। मुझे अपनी करतूतोंपर बड़ा पछतावा है। मैं नरकोंके भयसे सदा काँपता रहता हूँ। घुल-घुलकर हृदयसे रोता हूँ कि हे भगवन्! मेरा निस्तार कैसे होगा? मुझ नीचको कौन अपनायेगा? हाय! क्या मेरे लिये कोई उपाय नहीं है? क्या मैं प्रभुकी कृपा और उनके प्रेमको प्राप्त कर ही नहीं सकता? कोई उपाय हो तो बतलाइये!'

उत्तर—'उपाय क्यों नहीं है? ऐसा कौन जीव है जिसके लिये प्रभुकी कृपाका द्वार बंद हो? प्रभु ही यदि पापीको नहीं अपनायेंगे तो कौन अपनायेगा? वे पतितपावन हैं, बड़े ही दयालु हैं। भैया! तुम घबराओ नहीं। तुमपर तो उनकी कृपा बरसने लगी है—तभी तो तुम्हें अपनी करतूतोंपर पछतावा हो रहा है, तभी तो तुम नरकके भयसे काँपते, निस्तारके लिये रोते और प्रभुकृपा तथा प्रभुप्रेमको प्राप्त करनेके उपाय पूछते हो? जिस कृपाने तुम्हें ऐसी वृत्ति दी है, वही कृपा तुम्हारा निस्तार करेगी, वही तुम्हें भगवान्‌से भी मिला देगी! उस कृपापर विश्वास करो। मनमें निश्चय कर लो कि—एकमात्र भगवान् ही ऐसे परम दयालु हैं, जो पापियोंको अपनाते हैं। स्नेहमयी माता जैसे अपने बच्चेकी गन्दगी अपने हाथों साफ करती है, वैसे ही भगवान् अपने ही हाथों अपने जनके महापापोंका नाश करके उसे अपने हृदयसे लगा लेने योग्य पवित्र बना लेते हैं और बड़े हर्षसे हृदयसे लगा लेते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वेश्वर हैं, उनकी कृपासे पापोंका समूल नाश हो जायगा, उनकी भक्ति प्राप्त होगी और उनकी सेवाका अधिकार मिल जायगा। बस, एक वे ही ऐसे हैं, वे ही मेरे परम आश्रय हैं, वे ही मेरे एकमात्र रक्षक हैं, उनके सिवा मुझे कहीं भी ठौर नहीं। इस प्रकार निश्चय करके उनके भजनमें लग जाओ, फिर देखते-ही-देखते तुम्हारा तमाम कायापलट हो जायगा। तुम महान् साधु और भगवान्‌के अनन्य भक्त बन जाओगे। एक तुम्हीं क्यों, सच पूछो तो इस घोर कलियुगमें आज ऐसे कितने लोग हैं जो कुसङ्गमें पड़कर मनको मथ डालनेवाली प्रबल इन्द्रियोंके गुलाम होकर भी पाप-पथसे बिलकुल बचे हों? ऐसे कितने लोग हैं जिन्होंने जवानीकी गधापचीसीमें बुरे काम न किये हों और जिनका जीवन आदिसे अन्ततक निष्पाप, सर्वथा शुद्ध और परम पावन रहा हो? जिनका जीवन ऐसा पवित्र है, वे निश्चय ही परम पूज्य हैं, उनके चरणरजःकणको प्राप्त करनेवाला भी पावन हो सकता है। परंतु ऐसे लोग बिरले ही हैं। अधिकांश जनसंख्या तो आज ऐसी ही है, जो पापके कीचड़में फँसी है। ऊपरसे भले ही साफ मालूम हो। ऐसी दशामें उन लोगोंको अवश्य ही भाग्यवान् और भगवान्‌का बड़ा कृपापात्र समझना चाहिये, जो अपने बुरे कर्मोंके लिये पश्चात्ताप करते हैं,उनसे छूटनेका प्रयास करते हैं और भगवान्‌की कृपा तथा प्रेमकी प्राप्तिके लिये व्याकुल हो उठते हैं। वे दयालु भगवान् यही तो चाहते हैं। उनकी कृपा-सुधावृष्टिकी प्राप्तिके लिये इतना ही पर्याप्त है। पापोंका सच्चा प्रायश्चित्त हृदयके पश्चात्तापमें है और भगवान्‌की उस कातर प्रार्थनामें है—जिसमें अपनी बेबसीका सच्चा हाल बतलाकर भगवान्‌से कृपादान करनेके लिये रोया जाता है।

तुम पश्चात्ताप करो, रोओ, भगवान्‌से क्षमा-प्रार्थना करो और सबसे आवश्यक बात है, भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके, एकमात्र उन्हींको अपना परम रक्षक, सच्चा स्वामी, परम बन्धु, परम धन, परम इष्ट और परम आश्रय मानकर उनके भजनमें लग जाओ। बीत गयी सो बीत गयी; जो बुरे-भले कर्म बन गये सो बन गये। अब जितनी उम्र बाकी है, उसे भगवान्‌को सौंप दो। प्रत्येक श्वासमें उनका नाम जपो, उनका पावन स्मरण करो, प्रत्येक कार्य उनकी पूजाके लिये करो। फिर वे अपने-आप ही तुम्हें अपना लेंगे। देर नहीं होगी। देखते-ही-देखते तुम महान् पवित्र और उनके परम प्रेमी बन जाओगे। उनकी प्रतिज्ञाको याद करो—

श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

'यदि कोई अत्यन्त पापी भी अनन्यभाक् होकर (एकमात्र मुझको ही अपना रक्षक, स्वामी, आश्रय और परम इष्टदेव मानकर) मुझको भजता है (मेरे शरण होकर मेरे ही परायण होकर परम दृढ़ विश्वासके साथ हृदयकी निर्भरताके साथ मेरा सेवन करता है) वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है (उसने दृढ़रूपसे यही निश्चय कर लिया है कि एकमात्र परम शरण्य श्रीभगवान्‌के भजनके सिवा अब मुझे और कुछ भी नहीं करना है); ऐसे निश्चयवाला वह बहुत शीघ्र (देखते-ही-देखते) धर्मात्मा बन जाता है और नित्य रहनेवाली (भगवत्-प्राप्तिरूप) परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य समझ कि मेरा भक्त (पापकर्मसे सर्वथा न छूटा हुआ भी उपर्युक्त प्रकारसे मुझको ही एकमात्र परम आश्रय और परम रक्षक मानकर मेरा भजन करनेवाला) कभी नष्ट नहीं होता (अर्थात् कल्याणके मार्गसे कभी नहीं गिरता—वह मेरी कृपासे सर्वथा निष्पाप बनकर और मेरे द्वारा सुरक्षित होकर शीघ्र ही मुझको प्राप्त हो जाता है)।'

भगवान्‌की इस अमर आश्वास-वाणीपर विश्वास करो और अपनेको उनके चरणोंपर डालकर निश्चिन्त हो जाओ। यही परम साधन है, जो बड़े-से-बड़े पापीका क्षणोंमें उद्धार कर देता है।

धर्मशास्त्र ही एकमात्र सच्चे मार्ग-प्रदर्शक हैं

(पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल', रामायणी, साहित्येन्दुशेखर, साहित्यप्रभाकर, आयुर्वेद विशारद)

धर्मशास्त्र मानवमात्रके प्राण हैं। इन्हें आधार, गुरु एवं सर्वस्व भी कहा जाता है। इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वेदादिशास्त्र, स्मृतियाँ, पुराणेतिहास तथा रामायण आदि सद्ग्रन्थ परम कल्याणकारी धर्माचरणका ही उपदेश देते हैं। धर्मशास्त्रोंमें जीवनको सुखमय और सफल बनानेके उत्तम साधन पद-पदपर प्रतिष्ठित हैं। धर्मशास्त्रोंका हृदय अतिशय उदार है। जब कोई भी मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें ज्ञानशून्य होने लगे, निर्णय न ले सके अथवा दिग्भ्रमित होने लगे, तब उसे धर्मशास्त्रोंसे आज्ञा लेकर अपने कार्यका सम्पादन करना चाहिये, क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी गहन होती है—'**गहना कर्मणो गतिः।**' इसलिये क्या कर्म है? क्या अकर्म है? इस विषयमें विद्वान् लोग भी मोहित हो जाते है—'**किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।**' इस स्थितिमें एकमात्र शास्त्र ही कार्य और अकार्यकी व्यवस्थामें प्रमाण होते हैं—'**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।**' वर्तमानकी भीषण विभीषिकाकी परिस्थितिमें भव-संतरणके लिये धर्मशास्त्र ही सच्चे आश्रय हैं। धर्मशास्त्रोंका अनुशीलन, चिन्तन, मनन एवं पारायण करना प्रत्येक मनुष्यका पुनीत कर्तव्य है। धर्मशास्त्र ही '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' का उद्घोष करनेवाले मार्ग-प्रदर्शक हैं। वर्तमानमें भोग, ऐश्वर्य एवं धन आदिके प्रति बढ़ते मोहने पापाचार, अनाचार, अत्याचार और अगणित दुराचारोंको जन्म दे रखा है। इस विषयमें भागवद्धर्मके प्रतिपादक श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि—धनसे ही मनुष्योंमें चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जुआ और शराबकी प्रवृत्ति बढ़ती है। इसलिये कल्याणकामी पुरुषको अर्थनामधारी अनर्थको दूरसे ही त्याग देना चाहिये—

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥

(श्रीमद्भा० ११। २३। १८-१९)

नाना प्रकारके दुःखोंमें उलझा रहनेवाला व्यक्ति दुःखसे दूर होनेका उपाय जान नहीं पाता, परिणामस्वरूप और भी दुःखी होता जाता है। धर्मशास्त्रोंने इन दुःखोंसे छुटकारा पानेका उत्तम मार्ग बताते हुए कहा है—

ये दम्भान्नाचरन्ति स्म येषां वृत्तिश्च संयता।
विषयांश्च निगृह्णन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥
प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिताः।
प्रयच्छन्ति न याचन्ते दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

(महा०, शान्तिपर्व ११०। ३-४)

'जो दम्भयुक्त आचरण नहीं करते, जिनकी जीविका नियमानुकूल चलती है और जो विषयोंके प्रति बढ़ती हुई इच्छाको रोकते हैं, वे दुःखोंको लाँघ जाते हैं। जो दूसरोंके कटु वचन सुनाने या निन्दा करनेपर भी स्वयं उन्हें उत्तर नहीं देते, मार खाकर भी किसीको नहीं मारते, स्वयं देते हैं, परंतु दूसरोंसे माँगते नहीं, वे दुर्गम संकटसे पार हो जाते हैं।'

जो मनुष्य संसारमें रहकर भी यदि सांसारिक विषय-जालोंमें न उलझें, परमार्थ दृष्टिसे सबकी सेवा करें तो वे ईश्वरके अतिनिकट होते चले जाते हैं। ऐसे ही व्यक्तियोंको सदा संतुष्ट रहकर कण-कणमें अपने इष्टके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है—

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें भी ऐसी बात कही गयी है—

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

'लोकमें जो काम-सुख है और स्वर्गमें जो देव-सम्बन्धी महान् सुख है, वे तृष्णाके क्षय और संतोषद्वारा प्राप्त सुखके सोलहवें भागके बराबर भी नहीं हैं।' धर्मशास्त्र उपदेश देते हुए बारम्बार बताते हैं कि बाह्य इच्छाओंको समेट लो, क्योंकि इनसे व्यर्थका बन्धन ही होता है।

गरुडपुराणका कहना है कि अपने-अपने गृहस्थ-धर्म-कर्मका विधिवत् पालन करनेवाला पुरुष भी स्वाभाविक रीतिसे मोक्षपद प्राप्त कर लेता है—

स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्॥

(गरुडपु० १०९। ४३)

अपने साधनसे ही जीवनका परम लक्ष्य प्राप्त कर लेनेका उद्देश्य होना चाहिये। इस उद्देश्यकी प्राप्तिमें संयम-नियमकी प्रमुख भूमिका होती है। गीता (२। ६१)-में कहा गया है—

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

'जो संयमी होता है और जिसकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर और तत्त्वमें प्रतिष्ठित होती है।'

वस्तुतः यदि मनुष्य अशुभ विचार, अभक्ष्य-भोजन, कलुषित भाव तथा निन्द्य-आहार-विहारसे सुरक्षित रहे तो निःसंदेह दीर्घायु प्राप्त कर लेता है।

श्रीरामचरितमानस तो धर्मशास्त्रोंका सार है। इसमें रामकथामें प्रेम उत्पन्न होना ही मुख्य धर्मके रूपमें निरूपित है। इस रामकथाके श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन आदिसे धर्मके प्रबल शत्रु काम, क्रोध तथा मोह आदिका नाश होता है—

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

—विशाल हृदय और विमल बुद्धिकी प्राप्ति होती है—

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥

—यह अज्ञानका नाश करती है—

महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥

—इससे सर्वविध कल्याण एवं सर्वमङ्गलकी प्राप्ति होती है—

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

—सांसारिक विषय-रस-निवृत्तिके लिये इसका श्रवण आवश्यक है—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥

—इससे दृढ़ रामभक्ति प्राप्त हो जाती है—

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥

—और यह जन्म-मरणरूपी रोगकी दवा है—

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

—रामकथा भवसागर-संतरणके लिये अमोघ उपाय है—

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥

—इससे विषय, विवेक एवं ऐश्वर्यकी सहज प्राप्ति हो जाती है—

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥

इस प्रकार पग-पगपर ये सभी धर्मशास्त्र मानवोंपर कृपा करनेके लिये पथ-प्रदर्शकके रूपमें सर्वदा प्रदर्शित होते हैं। ये समस्त धर्मशास्त्र वर्तमानमें हम सबके लिये अभिनन्दनीय तथा प्रातःस्मरणीय होते हुए आचरणीय हैं।

साधकोंके प्रति—

सत्यकी खोज

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ६६९ से आगे]

जहाँ योग है, वहाँ भोग नहीं होता और जहाँ भोग है, वहाँ योग नहीं होता—यह नियम है। परंतु एक अवस्था ऐसी भी होती है, जिसमें साधकको योगका, ज्ञानका अथवा प्रेमका अभिमान हो जाता है और वह मान लेता है कि मैं योगी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ अथवा मैं प्रेमी हूँ। कारण कि अनादिकालसे जीवमें यह आदत पड़ी हुई है कि वह जिसके साथ सम्बन्ध करता है, उसका अभिमान कर लेता है; जैसे—धन मिलनेसे 'मैं धनी हूँ' आदि। मैं योगी हूँ—यह वास्तवमें योगका भोग है; क्योंकि इसमें योगका संग है, योगके साथ अहम् मिला हुआ है। मैं ज्ञानी हूँ—यह वास्तवमें ज्ञानका भोग है; क्योंकि इसमें ज्ञानका संग है, ज्ञानके साथ अहम् मिला हुआ है। मैं प्रेमी हूँ—यह वास्तवमें प्रेमका भोग है; क्योंकि इसमें प्रेमका संग है, प्रेमके साथ अहम् मिला हुआ है। भोग न रहनेपर योगी, ज्ञानी और प्रेमी नहीं रहता अर्थात् व्यक्तित्व सर्वथा मिट जाता है। कारण कि योग, ज्ञान या प्रेम मिलनेसे मनुष्य उनके साथ एक हो जाता है अर्थात् वह योगस्वरूप, ज्ञानस्वरूप या प्रेमस्वरूप हो जाता है, इसलिये उनका अभिमान नहीं होता। जबतक व्यक्तित्व रहता है, तबतक पतनकी सम्भावना रहती है। इसलिये जो योगका अभिमानी है, वह कभी भोगमें भी फँस सकता है; जो ज्ञानका अभिमानी है, वह कभी अज्ञानमें भी फँस सकता है; जो मुक्तिका अभिमानी है, वह कभी बन्धनमें भी फँस सकता है*; जो प्रेमका अभिमानी है, वह कभी रागमें भी फँस सकता है।

जब योग, ज्ञान और प्रेमका अभिमान (भोग) नहीं रहता, तब साधक मुक्त हो जाता है। मुक्त होनेपर भी साधकने जिस मत (प्रणाली)-को मुख्यता दी है, उसका एक सूक्ष्म संस्कार रह जाता है, जिसको अभिमानशून्य अहम् कहते हैं। जैसे भुने हुए चने खेतीके काम तो नहीं आते, पर खानेके काम आते हैं, ऐसे ही वह अभिमानशून्य अहम् जन्म-मरण देनेवाला तो नहीं होता, पर (अपने मतका संस्कार रहनेसे) अन्य दार्शनिकोंसे मतभेद करनेवाला होता है। तात्पर्य है कि उस सूक्ष्म अहम्के कारण मुक्त पुरुषको अपने मतमें संतोष हो जाता है। जबतक अपने मतमें संतोष है, अपनी मान्यताका आदर है, तबतक दूसरे दार्शनिकोंके साथ एकता नहीं होती। साधन तो अलग-अलग होते हैं, पर साधन-तत्त्व एक होता है अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि सभी साधन मिलकर साधन-तत्त्व होता है। मुक्त पुरुषका मत साधन-तत्त्व होता है। परंतु वह साधन-तत्त्वको ही साध्य मानकर उसमें संतोष कर लेता है।

जीव ईश्वरका अंश है, इसलिये वह जिस मतको पकड़ लेता है, वही उसको सत्य दीखने लग जाता है। अतः साधकको चाहिये कि वह अपने मतका अनुसरण तो करे, पर उसको पकड़े नहीं अर्थात् उसका आग्रह न रखे। न ज्ञानका आग्रह रखे, न प्रेमका। वह अपने मतको श्रेष्ठ और दूसरे मतको निकृष्ट न समझे, प्रत्युत सबका समानरूपसे आदर करे। गीताके अनुसार जैसे '**मोहकलिल**' का त्याग करना आवश्यक है, ऐसे ही '**श्रुतिविप्रतिपत्ति**' का भी त्याग करना आवश्यक है (गीता २। ५२-५३); क्योंकि ये दोनों ही साधकको अटकानेवाले हैं। इसलिये साधकको जबतक अपनेमें दार्शनिक मतभेद दीखे, सम्पूर्ण मतोंमें समान आदरभाव न दीखे, तबतक उसको संतोष नहीं करना

---

* येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥ (श्रीमद्भा० १०। २। ३२)

'हे कमलनयन! जो लोग आपके चरणोंकी शरण नहीं लेते और आपकी भक्तिसे रहित होनेके कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपनेको मुक्त तो मानते हैं, पर वास्तवमें वे बद्ध ही हैं। वे यदि कष्टपूर्वक साधन करके ऊँचे-से-ऊँचे पदपर भी पहुँच जायँ तो भी वहाँसे नीचे गिर जाते हैं।'

चाहिये। अपनेमें मतभेद दीखनेपर वह साधन-तत्त्वतक तो पहुँच सकता है, पर साध्यतक नहीं पहुँच सकता। साध्यतक पहुँचनेपर अपने मतका आग्रह नहीं रहता और सभी मत समान दीखते हैं—

पहुँचे पहुँचे एक मत, अनपहुँचे मत और।
'संतदास' घड़ी अरठ की, ढुरे एक ही ठौर॥
नारायण अरु नगर के, 'रज्जब' राह अनेक।
कोई आवौ कहीं दिसि, आगे अस्थल एक॥

मतभेदको लेकर आचार्योंमें लड़ाई नहीं होती, प्रत्युत उनके अनुयायियोंमें लड़ाई होती है। कारण कि अनुयायियोंको मुक्तावस्थाका अनुभव तो हुआ नहीं, पर मतका आग्रह (पक्षपात) रह गया, जबकि आचार्योंको अनुभव हो चुका है! आचार्योंके मतभेदसे अनुयायियोंमें अपने मतके प्रति राग और दूसरे मतके प्रति द्वेष पैदा हो जाता है। राग-द्वेष होनेसे सत्यकी खोजमें बड़ी भारी बाधा लग जाती है। परंतु राग-द्वेष न होनेपर साधक सत्यकी खोज करता है कि जब वास्तविक तत्त्व एक ही है तो फिर मतभेद क्यों है? इसलिये वह मुक्तिमें भी संतोष नहीं करता। सत्यकी खोज करते-करते वह खुद खो जाता है और **'वासुदेवः सर्वम्'** शेष रह जाता है!

जिस साधकमें पहले भक्तिके संस्कार रहे हैं, उसको मुक्तिमें संतोष नहीं होता। इसलिये जब उसको मुक्तिका रस भी फीका लगने लगता है, तब उसको प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। भक्ति साधन भी है और साध्य भी—**'भक्त्या सञ्जातया भक्त्या'** (श्रीमद्भा० ११। ३। ३१)। साधन-भक्तिमें साधन और साध्य दोनों भगवान् होनेसे अपने मतका आग्रह सुगमतासे छूट जाता है और साध्य-भक्ति अर्थात् प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमकी प्राप्ति स्वतः हो जाती है। प्रेमकी प्राप्ति होनेपर 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—ऐसे भगवान्‌के समग्र स्वरूपका साक्षात् अनुभव हो जाता है और साध्यमें अगाध प्रियता जाग्रत् हो जाती है। प्रियता जाग्रत् होनेपर किसी एक मतमें आग्रह नहीं रहता, सभी मतभेद गलकर एक हो जाते हैं। मुक्तिमें तो अखण्डरस, एकरस मिलता है, पर भक्तिमें अनन्तरस, प्रतिक्षण वर्धमान रस मिलता है। प्रेम सम्पूर्ण साधनोंका अन्तिम फल अर्थात् साध्य है। प्रत्येक साधकको अपने-अपने साधनके द्वारा इसी साध्यकी प्राप्ति करनी है। इसलिये मनुष्ययोनि वास्तवमें साधनयोनि अथवा प्रेमयोनि है; क्योंकि मनुष्यजन्म परमात्मप्राप्तिके लिये ही हुआ है और परमात्मप्रेमकी प्राप्तिमें ही मनुष्यजन्मकी सफलता है।

मनुष्य और साधक पर्याय हैं। जो साधक नहीं है, वह वास्तवमें मनुष्य भी नहीं है। जो साधक है, वही वास्तवमें मनुष्य है। मनुष्यका खास कर्तव्य है—सत्यको स्वीकार करना। परमात्मा हैं—यह सत्य है और संसार नहीं है—यह भी सत्य है। सत्यको सत्य मानना भी सत्यको स्वीकार करना है और असत्यको असत्य मानना भी सत्यको स्वीकार करना है। जिसके साथ हमारा सम्बन्ध है, उसके साथ सम्बन्ध मानना भी सत्यको स्वीकार करना है और जिसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है, उसके साथ सम्बन्ध न मानना भी सत्यको स्वीकार करना है। मूलमें एक ही सत्य है। वह यह है कि एक समग्र भगवान्‌के सिवाय और कुछ है ही नहीं—**'वासुदेवः सर्वम्'**। (समाप्त)

आवश्यकता ही आविष्कारकी जननी है। यदि जनसंख्या बढ़ेगी तो उसके पालन-पोषणके साधन भी बढ़ेंगे, अन्नकी पैदावार भी बढ़ेगी, वस्तुओंका उत्पादन भी बढ़ेगा, उद्योग भी बढ़ेगा। फिर जनसंख्या-वृद्धिकी चिन्ता क्यों?

मनुष्यके पास केवल पेट ही नहीं होता, प्रत्युत दो हाथ, दो पैर और एक मस्तिष्क भी होता है, जिनसे वह केवल अपना ही नहीं, प्रत्युत कई प्राणियोंका भरण-पोषण कर सकता है। फिर जनसंख्या-वृद्धिकी चिन्ता क्यों?

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ६३३ से आगे]

हमारे कहवे कौ यह तात्पर्य कबहूँ नहीं कि, घरके जीवन कौ पालन-पोषन न करै—यद्वा-घर त्याग कें दिखाऊ विरक्त बनि जाय, नहीं-नहीं, कदापि नहीं। जब ताँईं भोग्य है, रहै गृहस्थमें ही, किंतु—अपने पूर्व जन्मन की कमाई संसारी कामनमें ही खर्च न करि डारै। परदोष-दर्शन, परनिन्दा, द्रोह, कठोरता तथा हिंसा इनकौ सर्वथा परित्याग करि देय। जब संसारी काम करै, तौ पूरी लगन सौं जुटि परै है, ऐसैं ही जब भजनमें लगै, तब पूरे उल्लास सौं याहू में जुटि परै। ईमानदारी तौ तब है, जब भजनमें १०० गुनौं उत्साह अधिक होय।

श्रद्धावान्, गम्भीर, सरल, पूर्ण-सदाचारी, सुशील, नम्र, गुरुजन-सेवी, दीन-सहायक, परोपकारी, उदार एवं क्षमाशील बनिवे कौ अभ्यास बढ़ावै।

× × ×

श्रीजीवनधनमें प्रेम बढ़ायवे कौ पूर्ण-प्रयत्न करतौ रहै, इनसौं कबहूँ काम न करबावै। ये तौ केवल आत्मीयता तथा प्रियताके ही पात्र हैं। परम-कल्याणके ताँईं जीवनमें दो बातैं परम-कर्तव्य है—सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान तथा संयोग-वियोग आदिक द्वन्द्व जो आय जायँ उनकूँ सहतौ जायँ। हाँ, आगेके ताँईं अपनौं मार्ग परिमार्जित तथा उज्ज्वल बनातौ जाय। कैसी हू परिस्थिति आय जाय, परंतु परस्परमें वैमनष्यता न हौंन पावै। यदि नैकहूँ अवकास मिलै, तौ भजन करिवे में न चूकै। या जीवन कूँ अधिक झंझटन में न फँसावै।

× × ×

उतनौं ही काम बढ़ावै जामें—शान्ति रहै, पाप न करनौं परै, छल न करनौं परै, दूसरेकी जीविका न हरनी परै। स्वभावमें विकार न बढ़न पावैं और भजनमें बाधा न परै। अधिक लाभ-हानिकी सम्भावना न हौय। यही विचारतौ रहै तथा पूर्ण-प्रयत्न करतौ रहै कि, याही जीवनमें भजन बनि जाय। व्यर्थ बोलनौं, व्यर्थ देखनौं, व्यर्थ सुननौं तथा व्यर्थ विचारनौं—इन चारौं व्यर्थन सौं साधक कूँ सदैव बचनौं चहिए। यदि साधक या उपदेशामृतके पालनमें दृढ़ प्रतिज्ञ है जाय, तौ लोक तथा परलोक सहजमें ही सुधारि जायँ।

× × ×

सद्वाक्य-पालनकी विधिपर अधिक ध्यान राखनौं—प्रथम सद्वाक्य कूँ पढ़ै यद्वा सुनै तत्पश्चात बिचार करै। फिर क्रमशः शनैः-शनैः धारणामें लावै। तदनु शुभ अवसरमें पालन करिवे की प्रतिज्ञा करै। प्राण-पण सौं पालन करिवे की दृढ़ प्रतिज्ञा करि डारै तथा वा प्रतिज्ञा कूँ पूर्ण-प्रयत्न सौं पालन करै। शुभ अवसर है—श्रीराम-नवमी, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, मार्गशीर्ष-शुक्ला पञ्चमी, माघ-शुक्लामें श्रीगुरुवार तथा कार्तिक-शुक्ला षष्ठी।

× × ×

परम-कल्याण कौ मार्ग हौं—श्रीसद्गुरु भगवान्में पूर्ण-श्रद्धा, पूर्ण भगवद्-भाव। किंतु अन्य महात्मन में अवज्ञा बुद्धि न होय और अपने इष्ट में पूर्ण-भाव होय। इष्ट कौ भजन, पूजन, वन्दन, प्रार्थना, ध्यान तथा सानिध्य बढ़ातौ ही जाय। इनसौं प्रेम करिवे कौ अभ्यास करै। आत्मीयता कौ अनुभव करै। उत्तम प्रकार तौ यही है कि, इनके ताँईं अपनौं सर्वस्व-समर्पण करतौ जाय। इनसौं कछु इच्छा न करै। तथापि यदि कछु याचना ही करनी परै, तौ इनसौं ही करै। अन्य साधकन के श्रीभगवान् तथा हमारे श्रीभगवान् सब एक ही हैं। ऐसौ भाव राखनौं। श्रीभगवान्के काहू स्वरूपमें तिरस्कार बुद्धि न हौन पावै। एक ही श्रीभगवान्के ये सब स्वरूप हैं, ऐसौ विचार राखै। काहू भावुकके भावमें भूलिकैं हूँ साधारण भाव न लावै। दूसरेके भजनमें सहायता करनौं, यह सर्वोत्तम पुण्य है। काहू के साधनकी आलोचना न करै। एक ही

श्रीभगवान्‌की प्राप्तिके ताँईं अनेकन मार्ग हैं। श्रीभगवत्-प्राप्ति सबकूँ है सकै है, यही विचार राखनौं। महत्-अपराध सौं बहुत ही बचतौ रहै। जो भावुक श्रीभगवान्‌के जा रूपकी भावना करै है, अवसर आयवे पै श्रीभगवान् वा भावुकके ताँईं वाही रूप सौं दर्शन देयँ हैं। यह सिद्धान्त है—

यद् यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत् तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भा० ३। ९। ११)

× × ×

श्रीभगवद्‌के विषयमें कबहूँ विवाद न करै। समय, द्रव्य, शरीर, इन्द्रिय, परिकर तथा अन्तःकरण—इन सबनकूँ क्रमशः श्रीभगवत्‌की ओर ही झुकामतौ रहै। इन सबन की सार्थकता याही में है। जहाँ-जहाँ अपनौं मोह होय, उन सबन कूँ श्रीभगवत्‌में समर्पण करतौ जाय। इनसौं (प्रभुसौं) यही कहतौ रहै—**'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'** यह महावाक्य साधक के बड़े ही काम कौ है—***'सबु करि माँगहिं एक फलु राम चरन रति होउ।'*** श्रीप्राणनाथ सौं सम्बन्ध जोरि लैनौं, यही बड़ी भारी बुद्धिमत्ता है। साधक कौ परम-कर्तव्य यही है कि, शीघ्राति-शीघ्र श्रीजीवनधन सौं कोई सम्बन्ध निश्चित करि डारै। माता-पिता आदिक गुरुजनन में श्रद्धा राखै। इनकी आज्ञा-पालन करै तथा इनकी सेवामें अपनौं परम सौभाग्य मानैं। ***'जननी सम जानहिं परनारी'***—या महावाक्यके पालन कौ बहुत ही ध्यान राखै। अपनी सौं बड़ी अवस्था बारीन में मातृभाव। बराबर बारीन में भगिनीभाव तथा छोटीन में पुत्रीभाव सौं सदैव बर्ताव राखै। परस्त्री-स्पर्श महापाप समझै। चालीस वर्षकी अवस्था सौं पीछें ब्रह्मचर्यके पालन कौ अधिक विचार राखै।

× × ×

गृहस्थके ताँईं निर्देश है—अत्यन्त परिश्रम सौं, छल-कपट रहित शुद्धतापूर्वक कमाये भये अन्न सौं ही अपनौं तथा अपने कुटुम्ब कौ पालन करै। शुद्ध अन्न सौं शुद्ध मन बनै है। अपनी कमाई कौ भरोसौ राखै। परद्रव्य सौं सर्वथा बचतौ ही रहै। अपने कुटुम्बिन सौं स्वधर्म-पालन करातौ रहै। समझाय कैं, शास्त्रनकी बातनसे, जैसें बनै अपने जनन सौं श्रीभगवत् आराधना अवश्य ही करातौ रहै। दैवे कौ ही विचार राखै, लैवे कौ कम। सेवा करिवे कौ ही विचार राखै, सेवा लैवे कौ कम। सन्मान दैवे कौ ही विचार राखै, अपने सन्मान कौ कम। सबकूँ सुख पहुँचायवे कौ ही विचार राखै।

मित्र भले ही चाहें अनेकन होयँ, किंतु श्रीभगवत्-सृष्टिमें अपनौं एक हू शत्रु न बनावै। दूसरे कौ अनिष्ट कबहूँ न करै। या कामके ताँईं काहू कूँ अनुमति न दे। मन सौ हूँ कबहूँ न सोचै। जहाँ ताँईं है सकै, उपकार ही करै, याही के ताँईं दूसरे कूँ अनुमति दे, यही सोचै।

× × ×

दो बातन कूँ सदाँ भुलातौ रहै—(१) अपने सौं यदि काहू कौ उपकार बनि गयौ होय। (२) काहू ने अपने साथ कौई अपकार करि दियौ होय।

× × ×

दो बातन कूँ कबहूँ न भूलै—(१) अपने साथ यदि काहू ने उपकार कियौ होय। (२) दुर्भाग्य सौं यदि अपने सौं काहू कौ अपकार बनि गयौ होय।

जीवन भर दुःख मानतौ रहै, अपनी भूलके ताँईं पश्चात्ताप करै, सम्भव होय तौ क्षमा याचना करि लेय, त्यागिवेके योग्य दुर्गुण हैं। धारण करिवे के योग्य सद्‌गुण हैं। अहंकार न आवन पावै। सद्‌ग्रन्थन कौ स्वाध्याय अवश्य करै। योग्य पुरुषन की जीवनी अवश्य ही पढ़ै तथा उनके सद्‌गुणन कूँ अपनेमें धारण करिवे कौ अभ्यास करै। दीनता कौ भाव बढ़ातौ ही रहै। एक-एक क्षण कूँ बहुत सावधानी सौं परमावश्यक सत्कार्यन में ही व्यतीत करिवे कौ अभ्यास करै। इन्द्रियन की भोग-लिप्सा कम करतौ जाय। साधनके ताँईं स्वस्थ शरीरकी परमावश्यकता है। अतएव स्वास्थ्य कौ बहुत ही ध्यान राखै। चिन्ता, शोकादिक मनमें अशान्ति उत्पन्न करैं हैं। अतएव साधक कूँ इनसौं बहुत ही बचनौं चहिए। सवरे शुभ कर्मन कौ, सवरे सद्विचारन कौ, स्वाध्याय तथा सत्संग आदिकन कौ फल एक यही है कि, भजन करिवे की रुचि उत्पन्न होय। चाहें मालाकी संख्या सौं होय, चाहें घन्टानके विचार सौं होय। भजन कौ नियम अवश्य रहै। जितनौं नियम भजनके ताँईं बनावै, वाकूँ नित्य ही पूर्ण करि डारै। भजनमें प्रमाद, आलस्य तथा उपेक्षा न हौन पावै। भजन करिकैं भजन ही माँगै। [क्रमशः]

एक पलके सत्संगसे अलौकिक आनन्द (प्रभु)-की प्राप्ति

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

किन सच्ची बातोंको मानना है—

प्रभुने सभी भाई-बहनोंको तीन शक्तियाँ दी हैं—'बल, विवेक और विश्वास।' ये तीनों ही शक्तियाँ सत्संग करनेकी अमोघ सामग्री हैं। इनके आधारपर ही सभी भाई-बहनोंको कुछ सच्ची बातें माननी हैं। जिस पल आप उन बातोंको मानेंगे उसी पल आपके जीवनका सम्पूर्ण दुःख सदैवके लिये सर्वांशमें जड़मूलसे मिट जायगा और आपको अलौकिक आनन्दकी अनुभूति होगी।

विचित्र रियायत—

प्रभु बड़े दयालु हैं। उन्होंने सत्संग करनेके लिये ऊपर लिखी तीन शक्तियाँ दी हैं। यदि आप इन तीनोंमेंसे किसी एक शक्तिका भी सदुपयोग कर लेंगे तो शेष दो शक्तियोंका सदुपयोग स्वतः हो जायगा। अब आपका उत्तरदायित्व केवल इतना ही रहा कि आप किसी एक शक्तिके आधारपर 'सत्संग' कर लें, सच्ची बातोंको मान लें।

विवेकके आधारपर माननेवाली बातें—

विवेकका आशय उस शक्तिसे है जिसके द्वारा आप कुछ सच्ची बातोंको भलीभाँति जानते हैं; इतनी अच्छी तरहसे जानते हैं कि उन बातोंके लिये आपको किसीसे पूछने या समझने अथवा कहीं पढ़ने-सुननेकी जरूरत नहीं है। विवेक प्रभु-प्रदत्त पथ-प्रदर्शक है, गुरु है।

विवेकके प्रकाशमें गम्भीरतापूर्वक विचार करनेपर आपको अनुभव होगा कि आप निम्न सच्ची बातोंको जानते हैं, जिन्हें आपको मानना है—

(१) बुराई नहीं करना—

जब कोई दूसरा व्यक्ति आपके साथ बुरा व्यवहार करता है, जैसे—वह आपकी निंदा, आलोचना, आपका अपमान, अनादर, तिरस्कार करता है; आपको हानि पहुँचाता है; आपको धोखा देता है; आपके साथ झूठ बोलता है; आपकी सम्पत्तिपर अपना अधिकार करनेका प्रयास करता है, तब वह व्यक्ति आपको बहुत खराब लगता है, क्योंकि वह बुराई कर रहा है। विवेकके प्रकाशमें आपको पता चल गया कि वह व्यक्ति मेरे साथ बुराई कर रहा है। आप इस बातको जान गये। मानव मात्र जानता है कि ये सब बुराइयाँ हैं।

अब आप यह व्रत लीजिये कि मैं अपने जीवनमें, किसी भी प्रकारके भय अथवा प्रलोभनसे, किसी भी व्यक्तिके साथ, कभी भी, किसी भी प्रकारकी बुराई नहीं करूँगा। भूतकालमें मैंने जो बुराइयाँ की हैं, अब मैं उन बुराइयोंकी पुनरावृत्ति नहीं करूँगा। यह व्रत लेना ही सत्संग है, अपने विवेकका आदर है, प्रभु-प्रदत्त 'गुरु' की आज्ञाका पालन है, उनके प्रति की जानेवाली सच्ची श्रद्धा है, जीवनकी मूल साधना है।

विशेष सावधानी—

जो आपके साथ बुराई नहीं करता है, उसके साथ आप भी बुराई नहीं करते हैं। परंतु जब कोई व्यक्ति आपके साथ बुराई करता है तब आप उसे बुरा समझते हैं, उसका बुरा सोचते हैं, उसकी निंदा, आलोचना, बुराई करते हैं। विचार कीजिये, बुराई न करनेवालेके साथ कोई सामान्य व्यक्ति भी बुराई नहीं करता। यह कोई विशेष बात नहीं है। अब आप साधक हैं, अतः आपको इस बातकी विशेष सावधानी रखनी है कि आप बुराई करनेवालेके साथ भी बुराई नहीं करेंगे। यह साधना आप अपने परिवारसे आरम्भ कीजिये; मित्रों, सम्बन्धियों, सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंके साथ कीजिये। फिर तो आपका जीवन आनन्दसे परिपूर्ण हो जायगा।

कोई हमसे लड़ाई करे, हमारा अहित करे तो—

सामान्यतया परिवारके सदस्य, मित्र, सम्बन्धी, निकट सम्पर्कमें रहनेवाले व्यक्ति ही परस्पर निंदा, आलोचना, अपमान, बुराई आदि करते हैं। यदि इनमेंसे कोई व्यक्ति आपकी निंदा, आलोचना करे तो आप उसके प्रतिकारमें निंदा मत कीजिये। शान्त हृदयसे विचार कीजिये। यदि उसकी आलोचना ठीक है, वास्तवमें वह अवगुण आपमें है, तब तो हृदयसे उसे धन्यवाद दीजिये कि उसने आपके उस अवगुणको बता दिया, जिसकी तरफ अबतक आपका ध्यान ही नहीं गया। यदि वह अवगुण आपमें नहीं है तो एकदम निश्चिन्त रहिये, क्योंकि प्रभुकी दृष्टिमें आप निर्दोष हैं। अवसर मिले तो अपनी स्थितिको स्पष्ट कर दीजिये और उसके प्रति करुणाका भाव रखिये कि उसने अज्ञानतावश निंदा करने-जैसी बुराई करके अपनी ही हानि कर ली। चुपचाप, गुप्तरूपसे, सहृदयतापूर्वक उसके सुधारके लिये प्रभुसे प्रार्थना कर दीजिये।

यदि वह आपको शारीरिक अथवा आर्थिक हानि पहुँचानेका प्रयास करे तो यथाशक्ति अपनी सुरक्षाकी व्यवस्था कीजिये। उसे बुरा मत समझिये, अपने दुःखके लिये उसे दोषी मत मानिये, उसके अहितकी भावना मत रखिये। इस प्रकारकी

कार्यवाही कीजिये ताकि आप सुरक्षित रह सकें और वह सुधर जाय, उसका हित हो जाय। शान्त हृदय एवं कारुण्यभावसे उसके हितके लिये आप उसे बाह्य दंड भी दे सकते हैं। सावधान! दंड देते समय आपके हृदयमें लेशमात्र भी क्रोध, द्वेष अथवा बुरा भाव नहीं रहना चाहिये। भगवान् श्रीरामने रावणको और भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाको दंड दिया—करुणा-भावसे, उनके हित, कल्याण तथा उद्धारके लिये। न कि किसी ईर्ष्यादि द्वेष-भावसे।

बुराइयोंकी सूची—

आपके साथ किया गया दूसरोंका जो व्यवहार आपको अच्छा नहीं लगता, स्थूल-रूपमें वही बुराई है। झूठ, कपट, चोरी, विश्वासघात, धोखा, चुगली, निंदा, आलोचना, अपमान, निरादर, तिरस्कार, दूसरोंकी सम्पत्तिपर अपना अधिकार करना आदि स्पष्ट दीखनेवाली वे बुराइयाँ हैं जिन्हें आप जानते हैं। ममता, कामना, जगत्का आकर्षण आदि वे सूक्ष्म बुराइयाँ हैं जिन्हें विचारशील व्यक्ति ही जान पाते हैं। अभिमान, अहंकृति, मैंपनका आभास अति सूक्ष्म बुराइयाँ हैं।

जिस क्षण आप यह व्रत लेंगे कि अब मैं अपने जीवनमें किसी भी प्रकारकी बुराई नहीं रखूँगा—उसी क्षण आपका सत्संग हो जायगा।

(२) कामनाका त्याग—

यह आपके जीवनका अनुभव है अथवा इस बातको आप अच्छी तरह जानते हैं कि आप कामना-पूर्तिमें पूर्णतया पराधीन हैं। कामना करना तो आपके वशकी बात है, लेकिन उस कामनाको पूरी करना आपके वशकी बात नहीं है। जब कामना पूरी नहीं होती है तब आपको दुःख होता है। आप दुःख चाहते नहीं हैं। कामनाकी अपूर्ति ही दुःख, चिन्ता, भय, क्रोध, राग, द्वेष आदिका मूल कारण है। अब आप यह व्रत लीजिये कि मैं अपने जीवनमें किसी भी प्रकारकी कोई कामना नहीं रखूँगा—यही वास्तविक सत्संग है। जिस क्षण आप कामनाका त्याग करेंगे उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

(३) ममताका त्याग—

इस संसारकी कुछ वस्तुओं तथा व्यक्तियोंको व्यक्तिगत मानना और उनसे सुख लेनेकी आशा करना वास्तवमें ममता है। विचार करनेपर आपको अनुभव होगा कि संसारकी सभी वस्तुओं और व्यक्तियोंको आप 'अपनी' नहीं मानते हैं। इस विशाल संसारमें केवल तीन चीजें हैं जिनके बारेमें आपके हृदयमें यह भाव रहता है कि ये 'मेरी' हैं। इन तीनों चीजोंका नाम है—प्रभु-प्रदत्त शरीर, प्रियजन या परिवारके सदस्य और सम्पत्ति।

'इस शरीरको मैंने नहीं बनाया, मुझे याद नहीं है कि मैंने हाथ, मुँह, आँख, कान, हृदय एवं शरीरके अन्य अङ्गोंकी रचना की; अपनी इच्छासे मैंने इस परिवारमें जन्म नहीं लिया; मैं अपने शरीरको जैसा चाहूँ, वैसा नहीं रख सकता; मैं इस शरीरको जबतक चाहूँ, तबतक नहीं रख सकता; शरीरपर मेरा लेशमात्र भी अधिकार नहीं चलता; मैं शरीरमें होनेवाले परिवर्तन, बीमारी तथा शरीरकी मृत्युको नहीं रोक सकता; शरीर अपनी गतिसे चल रहा है'—इन सब बातोंपर आप गम्भीरतासे विचार करेंगे तो आपको स्पष्ट अनुभव होगा कि मुझे जो शरीर मिला है, वह मेरी व्यक्तिगत चीज नहीं है, किसीका दिया हुआ है, मुझे मिला हुआ है, कुछ समयतक मेरे पास रहेगा, देनेवाला इसे पुनः वापस ले लेगा। जो शरीर आपके सबसे अधिक निकट है, जब वह भी आपका नहीं है तो परिवारके सदस्य और सम्पत्ति, जो अपेक्षाकृत दूर हैं, वे आपके कैसे हो सकते हैं?

जिस क्षण आप यह व्रत लेंगे कि शरीर-परिवार-सम्पत्तिके रूपमें जो कुछ मुझे मिला है,उसे मैं अपनी व्यक्तिगत सामग्री नहीं मानूँगा, उसी क्षण आपके जीवनमें सत्संग होगा। शरीर, परिवारजन तथा सम्पत्तिको प्रभुकी धरोहर मानकर सँभालना—इनकी सेवा करना तो वास्तवमें प्रभुकी पूजा है। आप पूजा कीजिये, बड़ा आनन्द मिलेगा।

एक महत्त्वपूर्ण शंका—

आपके मनमें यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि ममताके बिना बालकोंका लालन-पालन, उनकी सेवा, शिक्षा एवं विवाह, वृद्ध तथा बीमार परिवारजनोंकी सँभाल, वस्तुओं एवं सम्पत्ति आदिकी देख-रेख—ये सब कार्य कैसे सम्पन्न होंगे; ममताके बिना पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायगी; अपने राष्ट्रको अपना नहीं मानेंगे तो राष्ट्रिय प्रेम नहीं रहेगा। जिन बालकोंको हम अपना बालक नहीं मानते हैं, जो व्यक्ति हमारे परिवारके सदस्य नहीं हैं, हम उनकी सँभाल नहीं करते हैं, हम उनकी सेवा भी नहीं करते हैं; इसी प्रकार दूसरोंकी सम्पत्तिकी देख-रेख भी हम नहीं करते हैं। यदि हम अपने शरीर, परिवारके सदस्यों और सम्पत्तिको 'अपना' नहीं मानेंगे तो इनकी सेवा तथा सँभाल कौन करेगा? —आपकी इस शंकाका समाधान इस प्रकार है—

सेवा करें, सँभालें, पर स्वार्थ न रखें—बोलचाल एवं दैनिक व्यवहारमें आप अपने शरीर, परिवारके सदस्यों तथा सम्पत्तिको अपना कहें, जैसे—यह मेरा मकान है, यह मेरी

जमीन-जायदाद है, ये मेरी वस्तुएँ हैं, यह मेरी पत्नी है, पुत्री है, यह मेरा पुत्र है, पति है, ये मेरे माता-पिता हैं, यह मेरा शरीर है, कागजोंमें भी आप अपना ही नाम लिखवायें—इसमें कोई हानि नहीं है। यदि आप यह कहेंगे—यह मेरे पति, पुत्र, माता-पिता, पत्नी आदि नहीं हैं, यह मेरी सम्पत्ति नहीं है तो आपका पारिवारिक एवं व्यावहारिक जीवन बिगड़ जायगा। इसलिये व्यवहारमें इन्हें 'यह मेरा है'—ऐसा कहें और अपना मानकर इनकी सेवा करें, सँभालें—ठीक वैसे ही जैसे अबतक आप कर रहे हैं। लेकिन सेवा तथा सँभालमें अपना स्वार्थभाव न रखें।

अपना स्वार्थ क्या है—

गहराईसे विचार करनेपर आपको अनुभव होगा कि आप इनको (शरीर-परिवारजन-सम्पत्तिको) इसलिये नहीं सँभालते हैं कि ये सब आपके हैं, बल्कि आप इन्हें इसलिये सँभालते हैं कि इनसे आपको सुख-सुविधा-आराम मिल रहा है, भविष्यमें भी मिलेगा, आप बालकोंका लालन-पालन 'अपना' मानकर नहीं करते हैं, इसलिये करते हैं कि इन बालकोंसे हमें भविष्यमें सुख मिलेगा, ये वृद्धावस्था, बीमारी, असमर्थतामें हमारी सेवा करेंगे, हमारा वंश चलता रहेगा—बस यही आपका स्वार्थ है। आप स्वार्थका त्याग कर दीजिये, सुख लेनेकी इच्छा-आशा-कामनाको छोड़ दीजिये और अपना मानकर इनकी खूब सेवा कीजिये, सम्पत्तिको सँभालिये—आपको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं होगी। बड़े-बड़े कारखानों एवं बैंकोंके मैनेजर कारखानों तथा बैंकोंको अपना नहीं मानते हैं, फिर भी स्वार्थवश पूरी सँभाल करते हैं। सेवा करनेवाले भाई-बहन किसीको अपना नहीं मानते हैं, जानते ही नहीं कि वे कौन हैं, फिर भी भरपूर सेवा करते हैं।

सुखकी आशा, स्वार्थ कैसे-क्यों छोड़ें—

यदि आप निम्नलिखित बातोंपर विचार करेंगे तो आप सुगमतापूर्वक स्वार्थका त्याग कर सकेंगे—

(क) सुख भोगना, इस जीवनका लक्ष्य नहीं है—प्रभु-कृपासे आपको मानव-जीवन मिला है। इस जीवनका लक्ष्य सुख भोगना नहीं है। श्रीरामचरितमानस (७। ४४। १-२)-में भगवान् श्रीराम हमें यही उपदेश देते हैं—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

इसका आशय है—हे भाई! इस शरीरके प्राप्त होनेका फल विषय-भोग (सुख) नहीं है। [इस जगत्के सुखोंकी तो बात ही क्या,] स्वर्गका सुख भी बहुत थोड़ा है और अन्तमें दुःख देनेवाला है। अत: जो लोग मनुष्य-शरीर पाकर विषयों (सुखों)-में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृतको बदलकर विष ले लेते हैं।

स्मरण रहे, इन्द्रियोंके सारे सुख तो पशु-पक्षीकी योनियोंमें भी मिल जायँगे। यदि आप स्वर्गका सुख भी भोग लेंगे तो भी उसका अन्तिम परिणाम दुःख ही होगा। मानव-जीवन लौकिक सुख-भोगके लिये नहीं है। इस जीवनका लक्ष्य है—शान्ति, मुक्ति, प्रेम, प्रभु-मिलनके अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति कर लेना।

(ख) स्वार्थी बन जाना—यदि आप अपने बालकोंका लालन-पालन स्वार्थवश करेंगे, प्रियजनोंके साथ स्वार्थपूर्ण व्यवहार करेंगे तो आपके बालक एवं प्रियजन स्वार्थी बन जायँगे। विचार कीजिये—आपको सेवाभावी पुत्र-प्रियजन चाहिये या स्वार्थी। आपमें विद्यमान स्वार्थकी भावना आपकी संतान, पत्नी, पति, भाई, बहन आदि परिवारजनोंको स्वार्थी बना देगी। फिर जबतक आपसे उनका स्वार्थ पूरा होगा, आपसे उन्हें सुख मिलेगा, तबतक तो वे आपकी सेवा करते रहेंगे और जब आप उनको सुख देनेमें असमर्थ हो जायँगे, तब वे आपकी सेवा करना बंद कर देंगे अथवा समाजके भय तथा अपनी प्रतिष्ठाके लिये, आपको एक भार समझकर, जैसे-तैसे आपकी बाह्य सेवा कर दिया करेंगे। उस समय आपको भयंकर दुःख होगा।

(ग) दुःख नहीं मिटना—यह आपके जीवनका अनुभव है कि आप इस संसारकी जिन-जिन वस्तुओं और व्यक्तियोंको अपना मानते हैं, उन्हींके बिगड़ने तथा वियोग होनेपर आपको दुःख होता है। आप जानते ही हैं कि आपके पास जो कुछ है, एक दिन वह आपके पास नहीं रहेगा। उसका वियोग निश्चित है। जिस दिन वियोग होगा, आप भयंकर दुःखमें आबद्ध हो जायँगे। जिन वस्तुओं एवं व्यक्तियोंको आप अपना नहीं मानते हैं, उनके वियोगमें आपको लेशमात्र भी दुःख नहीं होता है। दुःखका मूल कारण 'ममता' है न कि शरीर, परिवारजन तथा सम्पत्तिका वियोग।

(घ) कुछ नहीं दे सकते—सुखकी आशा करना आपकी भूल है, क्योंकि आपके परिवारका कोई सदस्य या अन्य कोई भी व्यक्ति आपको कुछ नहीं दे सकता। कैसे? विचार कीजिये, आप क्या चाहते हैं, आपका शरीर क्या चाहता है। आप चाहते हैं—मेरा दुःख मिट जाय, मुझे प्रभु मिल जायँ और आपके शरीरकी जरूरत है—हवा, भोजन, जल, वस्त्र, प्रियजन, संसारकी वस्तुएँ आदि। क्या आपके परिवारका कोई भी

सदस्य या कोई भी व्यक्ति आपका दुःख मिटा सकता है, आपको प्रभुसे मिला सकता है, कदापि नहीं। हाँ, वह दुःख-निवृत्ति तथा प्रभु-प्राप्तिका उपाय बता सकता है। उसके बताये हुए उपायको आपको ही अपनाना होगा। दुःख मिटेगा—ममता तथा कामनाके त्यागसे; प्रभु मिलेंगे—सब कुछ प्रभुका माननेसे। रही बात शरीरकी, जिसने आपके शरीरका निर्माण किया है, उसने शरीरकी व्यवस्था भी की है। व्यवस्था की है पहले और निर्माण किया है बादमें। शरीरको जो कुछ मिलना है, वह पूर्वनिश्चित है। इसीका नाम है—प्रारब्ध। आप शरीरकी सेवा करते रहें, चिन्ता न करें, क्योंकि यह शरीर आपका अपना नहीं है। किसीकी धरोहर है।

(ङ) चिन्ता होना—आपके जीवनमें जबतक ममता रहेगी, तबतक किसी भी उपायसे आपकी चिन्ता नहीं मिटेगी, आप मानसिक तनावसे ग्रस्त रहेंगे। जिनमें आपकी ममता है, वे मिट जायँगे—शरीर एवं प्रियजनोंकी मृत्यु हो जायगी, समस्त सम्पत्ति अन्ततः नष्ट हो जायगी, फिर भी आपकी चिन्ता यथावत् बनी रहेगी। स्मरण रहे, शरीर छूट जाता है, ममता-कामना सूक्ष्म शरीरके साथ आपके साथ जाती है। इसलिये स्थूल शरीरके नाश होनेके पूर्व ही ममता-कामनासे मुक्त हो जाना आवश्यक है—परम श्रेयस्कर है।

(च) दुरुपयोग होना—'यह मेरी है'—ऐसा मानकर आप अपने शरीर-स्वजन-सम्पत्तिका दुरुपयोग कर सकते हैं। आप कह सकते हैं—मेरा पुत्र है, मेरी पत्नी है, मेरी सम्पत्ति है—मैं जैसा चाहूँ, वैसा करूँगा। आपकी इस बातको सुनकर दूसरे भी चुप हो जायँगे। परंतु 'दूसरों' की धरोहर मानकर आप उसका दुरुपयोग नहीं कर सकेंगे। आपके हृदयमें यह हिचकिचाहट रहेगी—दूसरोंकी चीज है, दुरुपयोग करनेपर वे उलाहना देंगे, आपके परिवारजन, पड़ोसी, सम्बन्धी, समाजके व्यक्ति सभी आपको दुरुपयोग करनेसे रोकनेका प्रयास करेंगे।

(छ) राग-द्वेष होना—यदि आप पहले ही यह आशा कर लेंगे कि मेरे बालक बड़े होकर मेरी सेवा करेंगे, बहू मेरी आज्ञाका पालन करेगी, मेरा शरीर स्वस्थ ही रहेगा तो आप राग-द्वेषमें फँस जायँगे। यदि आपकी आशा पूरी हो गयी तो जो आपकी आशा पूरी करेंगे, उनमें आपका राग (मोह) हो जायगा। यदि आपकी आशा पूरी नहीं हुई तो जिन्होंने आपकी आशा पूरी नहीं की, उनसे आपको द्वेष हो जायगा, उनपर आपको क्रोध भी आयेगा। द्वेष आपको चौबीस घंटे जलाता रहेगा। राग उस दिन आपको बहुत रुलायेगा, जिस दिन जिनमें आपका राग है, उनकी मृत्यु होगी। यदि आपकी मृत्यु पहले हो गयी तो अन्तिम समयमें आपको उनकी याद आयेगी, उनकी चिन्ता होगी, उन्हें छोड़नेका भीषण दुःख होगा, जिनमें आपका राग है। आपकी मृत्यु बहुत दर्दनाक बन जायगी। ये दोनों कार्य होंगे ही—चाहे पहले उनकी मृत्यु हो चाहे आपकी।

(ज) प्रभुकी मान लें—आप प्रभु-विश्वासी हैं, यदि आप इस बातको मानते हैं कि इस सम्पूर्ण संसारके निर्माता, संचालक एवं स्वामी (मालिक) परमात्मा हैं तो आपको यह बात माननी ही होगी कि शरीर-परिवार एवं सम्पत्तिके रूपमें इस संसारका जो अंश मेरे पास है, जिसे मैं अपना मानता हूँ, उसके भी मालिक परमात्मा हैं। अब आप अपने शरीर एवं परिवारजनोंको अपने प्यारे प्रभुका मेहमान मानकर इनकी भरपूर सेवा कीजिये और सम्पत्तिको प्रभुकी धरोहर मानकर इसकी रक्षा, सुरक्षा एवं देख-रेख कीजिये। इसका सदुपयोग कीजिये। आपके दैनिक व्यावहारिक जीवनमें इस मान्यतासे लेशमात्र भी अड़चन नहीं आयेगी, प्रत्युत परिवारकी सेवासे आपका परिवार स्वर्गसे भी सुन्दर बन जायगा, सम्पत्तिका सदुपयोग करके आप सम्पत्तिके बन्धनसे मुक्त हो जायँगे। आपका जीवन प्रभुकी अखण्ड स्मृति, उनकी अगाध प्रियता, सद्भाव तथा सेवाके अलौकिक आनन्दसे भर जायगा। इसीका नाम है—प्रभुमें विश्वास करना, प्रभुको मानना।

(४) शरीर मेरा नहीं है, मैं शरीर नहीं हूँ—

प्रभुके चरणोंमें शान्त होकर बैठिये, विचार कीजिये। आप इस सच्ची बातका अनुभव करेंगे कि जो शरीर मेरे पास है, वह मेरा नहीं है, मैं शरीर नहीं हूँ। विचार कीजिये—क्या इस शरीरको आपने बनाया है, क्या आपने अपनी इच्छासे इस परिवारमें जन्म लिया है? क्या आप अपने इस शरीरको जबतक चाहें और जैसा चाहें, तबतक और वैसा ही रख सकते हैं, क्या शरीरपर आपका नियन्त्रण चलता है?—इन सब प्रश्नोंका एक ही उत्तर है—नहीं, नहीं, नहीं। आपको अनुभव होगा—यह शरीर मेरा तो नहीं है, मुझे मिला हुआ है, देनेवाला इसे वापस ले लेगा, सदैव यह मेरे पास नहीं रहेगा।

अब सोचें—मैंने इस शरीरके बचपन तथा यौवनको देखा; मैंने इस शरीरको नीरोग एवं रोगी देखा; मैंने इस शरीरके सम्मान तथा अपमानको देखा; मैंने इस शरीरके परिवर्तनको देखा। देखनेवाला सदैव उससे अलग होता है, जिसे वह देखता है। मैं तो देखनेवाला हूँ। जिस शरीरको मैं 'मेरा' कहता हूँ, जैसे ये मेरे हाथ हैं, मेरे पैर हैं, मेरे कान

हैं, मेरी आँखें हैं, मेरे शरीरमें सब जगह दर्द है, आदि, क्या वह 'मैं' हो सकता है। कहनेवाला सदैव उससे अलग होता है, जिसे वह 'मेरा' कहता है। अपनेको शरीर मानकर जब आप किसीको 'मेरा' कहते हैं, आप किसीको देखते हैं तो क्या आपको यह अनुभव नहीं होता कि 'मैं' वह नहीं हूँ जिसे मैं 'मेरा' कहता हूँ, जिसे मैं देखता हूँ। आपके हृदयमें प्रश्न पैदा होगा—फिर मैं कौन हूँ? जिस क्षण आप इस सच्ची बातको मान लेंगे कि 'मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है'—बस उसी क्षण आपको यह अनुभव हो जायगा कि—'मैं प्रभुका अंश हूँ, प्रभु मेरे हैं'। प्रभुने आप सभी भाई-बहनोंको यह विचित्र शक्ति भी दी है कि आप संत-भक्त तथा ग्रन्थ-वाणीमें लिखी और सुनी हुई इस बातको भी इसी पल मान सकते हैं कि—'मैं प्रभुका अंश हूँ, प्रभु मेरे हैं।' इस सच्ची बातको अनेक बार सुनने-पढ़नेके बाद भी आप इसे क्यों नहीं मान पा रहे हैं? जिस क्षण आप यह मानेंगे—मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है—उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

(५) मिली हुई सामग्री मेरे लिये नहीं है—

इसका आशय यह है कि शरीर-परिवार एवं सम्पत्तिके रूपमें आपको संसारकी जो सामग्री मिली है, उसके द्वारा आपकी माँग पूरी नहीं होगी, अर्थात् आप जो चाहते हैं, वह नहीं मिलेगा। आप चाहते हैं—मेरा दुःख मिट जाय, मुझे शान्ति, मुक्ति, भक्ति, भगवान् मिल जायँ। मिली हुई सामग्रीसे दुःख नहीं मिटेगा, प्रभु नहीं मिलेंगे। इसलिये यह आपके लिये नहीं है। हाँ, मिली हुई सामग्रीके द्वारा यदि आप सेवा करेंगे तो आप दुःखसे मुक्त होकर प्रभुकी ओर उन्मुख होंगे। इस दृष्टिसे मिली हुई सामग्री शरीर-परिवार-समाज तथा संसारकी सेवाके लिये है, आपके लिये नहीं। जिस क्षण आप यह सच्ची बात मानेंगे कि जो कुछ मुझे मिला है, वह मेरे लिये नहीं है, उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

(६) मिले हुएका वियोग सुनिश्चित है—

आप जानते ही हैं कि आपको जो शरीर-परिवार एवं सम्पत्ति मिली है, एक दिन यह मिली हुई सामग्री आपके पास नहीं रहेगी। वह दिन अवश्य आयेगा, जब आपको अपना शरीर, परिवार तथा सम्पत्ति यहीं छोड़कर यहाँसे अन्तिम विदाई लेनी होगी। यह भी सम्भव है कि आपके सामने ही परिवारके सदस्य अथवा सम्पत्तिका वियोग हो जाय। मिली हुई सामग्री सदैव आपके पास नहीं रहेगी। जबतक यह सामग्री है तबतक सेवा कीजिये। 'स्थूल शरीर' को श्रमी, संयमी, सदाचारी, स्वावलम्बी बनाये रखना स्थूल शरीरकी सेवा है। 'सूक्ष्म शरीर' को ममता, कामना, राग, द्वेष, दीनता तथा अभिमानसे मुक्त करके निर्मल एवं पवित्र बनाये रखना सूक्ष्म शरीरकी सेवा है। 'कारण शरीर' को कर्तापनके अभिमानसे मुक्त करके सर्वथा अहंकार-शून्य बनाकर इसके अस्तित्वको मिटा देना कारण शरीरकी सेवा है। तीनों शरीरोंकी सेवा कीजिये, तीनों शरीरों और सम्पत्तिके माध्यमसे अपने स्थूल शरीर, परिवार, समाज तथा संसारकी सेवा कीजिये और 'आप' प्रभुकी सेवा कीजिये। मैं प्रभुका हूँ, प्रभु ही मेरे अपने हैं—इस सच्ची बातको मानना ही प्रभुकी सेवा है। मिले हुएका वियोग होगा—इस बातको माननेके दो परिणाम होंगे—मिली हुई सामग्रीमें ममताका नाश और मिले हुएके द्वारा सेवाका शुभारम्भ। जिस क्षण आप इस सच्ची बातको मानेंगे कि मिले हुएका वियोग सुनिश्चित है, उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

(७) जगत् नहीं है—

जगत्के रूपमें आपको जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, वह है ही नहीं—इसका आशय यह है कि संसारकी प्रत्येक वस्तु प्रतिपल बदल रही है, इसमें निरन्तर परिवर्तन हो रहा है, इसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, यह बदलकर विनाशकी ओर जा रही है। यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है। आपको मिला हुआ शरीर संसारका एक नमूना है। यह शरीर भी बदल रहा है। यह बदलाव प्रतिपल हो रहा है। आँखोंसे दिखायी नहीं देता। परंतु बुद्धिसे विचार करनेपर स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिपल परिवर्तन हो रहा है। इसीलिये कहा जाता है—जगत्का अस्तित्व नहीं है, जगत् तो परिवर्तनका पुञ्ज है। जगत् है ही नहीं। जो वस्तु एक पल पहले जैसी थी, वही वस्तु एक पल बाद वैसी नहीं रही, वह बदल चुकी है। इस सच्ची बातको मानते ही जगत्की ममता तथा कामनाका नाश हो जाता है। जिस क्षण आप इस बातको मानेंगे कि जगत् नहीं है, उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

सबसे पहले किस बातको मानें—

ऊपर लिखी सातों बातें सच्ची हैं, आप इन बातोंको भलीभाँति जानते हैं। सबसे पहले आप उस सच्ची बातको मान लीजिये जो आपको सबसे सरल लगती है। एक बातको मानते ही दूसरी बातको माननेकी सामर्थ्य स्वतः आ जायगी। फिर आप सभी बातें मान लेंगे। इसी क्षण इस साधनाको आरम्भ कीजिये।
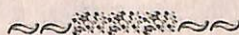
प्रारब्धका खेल—हँसके खेल या रोके झेल

(श्रीसुभाषजी लखोटिया)

चाहे हम व्यापारी हों, चाहे पारिवारिक हों और चाहे सामाजिक हों, जब कभी भी कोई समस्या हमारे सामने आती है तो हमें चाहिये कि हम उस समस्याका सामना बुद्धिसे करें, विवेक एवं विचारसे करें। परंतु समस्याके समाधानका सबसे आसान तरीका यह है कि हम प्रारब्धकी बातको स्वीकार करें। 'प्रारब्ध' एक ऐसा शब्द है जिसके अंदर एक शब्दमें हजारों, लाखों, करोड़ों व्यक्तियोंको सुख-शान्ति देनेकी शक्ति है। अगर आप और हम कोई अच्छा कार्य कर रहे हैं तो निश्चय ही इस सत्कर्मका हमारे भविष्यमें बननेवाले प्रारब्धपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। यह प्रश्न कई बार मनमें आता है, विशेषकर उस व्यक्तिके मनमें, जो लोगोंकी सेवा करता है, लोगोंकी मदद करता है, किसीको धोखा नहीं देता, किसीको कष्ट नहीं पहुँचाता, किसीका दिल नहीं दुःखाता, फिर लोग उसे धोखा क्यों देते हैं, लोग उसे परेशान क्यों करते हैं? इस प्रश्नका उत्तर बार-बार वह अपने मनसे पूछता है, परंतु मन जवाब नहीं दे पाता। लेकिन जब वह व्यक्ति आध्यात्मिक जगत्से सम्बन्ध स्थापित करता हुआ अध्यात्मसे भाव-भावान्वित होता हुआ हमारे आध्यात्मिक ग्रन्थोंको पढ़ता है तब उसके मनको शान्ति मिलती है और तब उसे पता चलता है कि उसके पुराने प्रारब्ध खराब थे। उसीके कारण वर्तमानमें स्वयं अच्छा होते हुए, स्वयं किसीको दुःख नहीं देते हुए भी वह व्यक्ति परेशान हो रहा है और कष्ट उठा रहा है तथा लोग उसे तंग कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें कई बार आदमीका मन विचलित हो जाता है—वह किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है और सोचता है कि आखिर मैं क्यों अच्छा रहूँ, अच्छे कार्य करूँ? जब अच्छा रहने और अच्छे कार्य करनेपर भी लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करते, तब इन सत्कर्मों एवं सदाचरणोंसे क्या लाभ? ऐसा सोचना केवल स्वयंकी ही कमजोरी है; क्योंकि अगर आज हम किसीका अच्छा कर रहे हैं, भला कर रहे हैं तो उसका पुण्य हमारे आनेवाले प्रारब्धको अच्छा करेगा। इसलिये हमें चाहिये कि अगर आज हमें किसी प्रकारकी परेशानी हो रही है तो वह हमारे प्रारब्धका ही खेल है—उसीका प्रतिफल है, जिसे चाहे हम हँसके खेलें या रोके झेलें।

अपने प्रारब्धकर्मोंका ही परिणाम है कि आज एक व्यक्ति बहुत अमीर है तो दूसरा अत्यन्त गरीब। अब तो हम अपने पूर्वनिर्मित प्रारब्धके बारेमें कुछ कर नहीं सकते, परंतु भविष्यमें अपना प्रारब्ध अच्छा बने, उसके लिये तो हम सत्कर्म कर ही सकते हैं। अतः हमको चाहिये कि हम अपने पुराने प्रारब्धको दोष न दें, अगले जन्मके प्रारब्धको पवित्रतम और श्रेष्ठतम बनानेके लिये उत्कृष्टतम सत्कर्म करते रहें; जिससे पुराने प्रारब्धके दोष इसी जन्ममें समाप्त हो जायँ और इस समयके किये सत्कर्मोंसे भविष्यके अच्छे प्रारब्धका निर्माण हो।

परिवारमें अशान्ति, व्यापारमें साझेदारद्वारा धोखा, सामाजिक संगठनमें अपने ही मित्रोंद्वारा विश्वासघात—यह सब नाशवान् जगत्की बातें हैं। हमें इन बातोंसे लगाव न रखकर अपने प्रारब्धके ऊपर आस्था रखनी चाहिये। ऐसी आस्था रखनेपर हमारा वर्तमान और भविष्य निश्चित रूपसे सुदृढ़ होगा और हमें किसी प्रकारकी मानसिक चिन्ताएँ तथा तनावग्रस्त करनेवाली शक्तियाँ हरा नहीं सकती। अतः हमारे जीवनमें अगर कोई परेशानी, कोई समस्या आती है तो धैयपूर्वक अविचलित भावसे हमें केवल अपना कर्तव्य करते रहना चाहिये, सन्मार्गपर निरन्तर बढ़ते ही रहना चाहिये। जब हम ऐसा करते रहेंगे तब हम पायेंगे कि अच्छे कर्मोंके सम्पादनसे ही पुराने संचित कर्म या प्रारब्धके पाप कटते जाते हैं।

मनकी शान्तिका नाम है प्रारब्धकी आस्था, जिसे हम चाहे हँसके मान ले या दुःखी होकर झेलते रहें। इसी कर्मयोगका संदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २। ४७)

अर्थात् (हे अर्जुन!) तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।

अभिप्राय यह कि प्राणिमात्रको प्राप्त सुख-दुःखादि द्वन्द्वात्मक परिस्थितियोंमें अनुद्वेग एवं दृढ़ स्थैर्यभावसे निर्लिप्त होकर निष्कामपूर्वक अत्यन्त उत्साहसे कल्याणकारी सत्कर्मोंका सम्पादन करते रहना चाहिये, क्योंकि निष्काम कर्मयोगका आश्रय ग्रहण कर प्राणिमात्र त्रिविध दुःखोंसे मुक्त होकर आत्यन्तिक निवृत्ति (परमात्मा)-को प्राप्त कर लेता है।

प्रभुके अवतारोंकी लीला

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

सामान्यतया जब लीलाकी बात होती है तो सहज ही यह समझा जाता है कि लीला माने 'रामलीला' या 'रासलीला'। उत्तर भारतमें आज ये ही दो विधाएँ विशेष-रूपसे प्रचलित हैं।

वैष्णव-परम्परामें जो रासलीलाएँ होती हैं वे मथुरा और ब्रजभूमिकी अप्रतिम धरोहर हैं। वैसे भी वैष्णव-साहित्यमें लीलाकी बहुत अधिक महत्ता है। भक्त वैष्णव-लीलामें विशेष विश्वास करते हैं। भगवान् विष्णु सृष्टि-निर्माण करते हैं और असम्पृक्त रहकर नित्य लीला करते हैं; फिर भी जब कभी क्रीडा करनेकी उनकी इच्छा हुई, तब अवतार धारण कर अपने ही ब्रह्माण्डमें प्रवेश करते हैं, तो यही होती है उनकी अवतार-लीला। जब भक्त उस अवतार-लीलाका अनुकरण करते हैं, तब इसे अनुकरण-लीला कहा जाता है। इस हरिलीलाका अनुकरण ही रामलीला और कृष्णलीला है।

महाराष्ट्रमें लीलाको 'ललित' कहते हैं और इस विधामें दशावतार-लीलाका आयोजन होता है। काशीके 'चित्रकूट-रामलीला' में अन्तिम दिन 'दशावतार' की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा स्थापित अस्सी (वाराणसी)-की कृष्णलीलामें एक दिन 'दशावतार'की झाँकी होती है।

तमिलनाडुमें दो हजार वर्ष-पूर्व भगवान् शंकरकी ६४ लीलाएँ प्रस्तुत की जाती थीं और इनका आधार था '**तिरू बिलैया इल पुराणम्**' (श्रीलीला-पुराणम्)। 'भरतनाट्य' और जयदेवके 'गीतगोविंद' के आधारपर ओडीसी-नृत्यमें भी दशावतारकी कथा कही जाती है। दस अवतारोंमें राम और कृष्णकी कथाएँ समृद्ध हैं और उनकी लीलाएँ करना सबको रुचिकर लगता है। अन्य अवतारों—नृसिंह, वामन और बुद्धकी लीलाओंमें भी सामग्री मिलती है। परशुराम और बलरामके दर्शन राम और कृष्णकी लीलामें ही हो जाते हैं; फिर भी कानपुर (उत्तरप्रदेश)-में 'परशुरामी' लीला होती है जो वास्तवमें रामलीलाका ही अङ्ग है।

हरिवंशपुराणमें एक लीलाका विवरण प्राप्त होता है, जिसमें द्वारकाके राजकुमार प्रद्युम्नने असुरराज वज्रनाभके नगरमें प्रवेश पाने और असुरराजका वध करनेके लिये 'भदे' नामक नटका वेष धारण किया और अपने यादव पुरुष और स्त्री सहयोगियोंकी मण्डली बनाकर वज्रपुर पहुँचे। उनकी मण्डलीने राजधानीमें प्रदर्शनकी अनुमति चाही, परंतु उन्हें पहले 'स्वपुरा' नामक उपनगरमें ही लीला करनेकी अनुमति मिली। उन लोगोंने 'रामायण' महाकाव्यपर आधारित राम-जन्मकी लीला की—(**रामायणं महाकाव्यमुद्देश्यं नाटकीकृतम्**)। इस अद्भुत लीलाका दर्शन करते हुए असुर दर्शक आश्चर्यचकित हो मण्डलीकी वेशभूषा, संस्कार और अभिनयकी सराहना-प्रशंसा करते रहे।

लीलाकी सफलतासे तत्काल उन्हें राजाके समक्ष राजभवनके अंदर लीला करनेका निमन्त्रण मिला। आरम्भमें नृत्य और वादन हुआ। तब मण्डलीकी महिला सदस्योंने 'गङ्गा-अवतरण' गायन किया। इसे सुनकर असुर बहुत प्रभावित हुए। मङ्गलाचरण हुआ। तब प्रद्युम्नने एक श्लोक पढ़ा जो गङ्गा-अवतरणसे सम्बद्ध था और इसके साथ '**सम्यक् स्वाभिनयान्वितम्**' भाव-नृत्य भी किया। इसके बाद उन लोगोंने नलकूबरसे मिलने जाती रम्भाको रावणद्वारा मार्गमें रोकनेकी कथा प्रस्तुत की। इसमें मनोवतीने रम्भाकी, शूरने रावणकी, प्रद्युम्नने नलकूबरकी और साम्बने विदूषककी भूमिका निभायी। मायाद्वारा मञ्चपर कैलास पर्वत दिखाया गया, दुष्ट रावण शापग्रस्त हुआ और रम्भाको नलकूबरने आश्वस्त किया।[1] नारद ऋषिकी महिमाका नृत्याभिनय हुआ। असुरोंने प्रसन्न होकर नटोंकी प्रशंसा की और उन्हें भरपूर पुरस्कार दिया।

उपलब्ध जानकारीके अनुसार काशीमें मेघा भगत और गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने रामलीला आरम्भ की, साथ ही उन लोगोंने अन्य लीलाएँ भी आयोजित कीं। इनमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा स्थापित तुलसीघाटपर कृष्णलीला होती है। जनश्रुतिके अनुसार प्राचीन कालमें यहाँ ध्रुवलीला, नृसिंहलीला भी होती थी। मेघा भगतद्वारा प्रारम्भ की गयी चित्रकूट-लीलामें 'वामनलीला', 'नृसिंहलीला' और 'फागलीला' आज भी होती है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा प्रारम्भ की गयी 'कृष्णलीला'-की कथा बड़ी रोचक है। नामसे भ्रम होता है कि यह

१-रम्भाभिसारकौवेरनाटकं ननृतुस्ततः। शूरो रावणरूपेण रंभावेषमनोवती॥
नलकूबरः प्रद्युम्नः सांबस्तस्य विदूषकः। कैलासोरोपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः॥

व्रजकी रासलीला-जैसी लीला होगी, परंतु ऐसा है नहीं। जहाँ व्रजकी रासलीलामें नृत्य-गायन प्रमुख होता है, वहीं तुलसीकी रामलीलामें संगीत नहीं होता। अस्तु, यहाँकी 'कृष्णलीला' भी रामलीलाकी ही परिपाटीमें होती है।

कृष्णलीला तुलसीघाटपर होती है, इसमें रामलीलाकी भाँति स्थान-परिवर्तन नहीं होता। इसमें तीस-पैंतीस पात्र भाग लेते हैं। लीलाका जयकार *'बोल वृन्दावन बिहारीलालकी जय'* के उद्घोषसे होता है।

कृष्णलीला प्रतिवर्ष कार्तिक कृष्ण अष्टमीसे आरम्भ होकर मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदातक चलती है। इस कृष्णलीलामें इक्कीस प्रसंग होते हैं। काशीका यही 'लाखा मेला' है। इस लीला-प्रसङ्गमें—गङ्गातटपर कृष्ण गेंद खेलते हैं। नौकाओंके घेरेमें बने जलीय मञ्चके तटपर कदम्बवृक्षपरसे कन्हैया 'कालीदह' में कूद जाते हैं। यमुना (गङ्गा)-जलसे विशालकाय कालिय नाग प्रकट होता है और कृष्ण उसके फनपर खड़े वंशी बजाते हैं। नाग-नथैया जलीय मञ्चकी दो बार परिक्रमा होती है। दर्शकोंमें काशी-नरेश भी होते हैं, जो भगवान् कृष्णकी पूजा करते हैं। लाखों दर्शकोंके बीच यह पाँच मिनटकी अद्भुत लीला ठीक संधिकालके समय सम्पन्न हो जाती है। इस लीलामें संवाद नहीं होते, केवल 'दिव्य झाँकी' का दर्शन-सुख पाकर भक्त दर्शक भाव-विह्वल और धन्य-धन्य हो जाते हैं।

नृसिंहलीला—

वैशाख शुक्ल १४ (नृसिंह-चतुर्दशी-)को सायंकाल पाँच बजे नरहरिपुरामें नृसिंह मन्दिरके पास, नृसिंह चबूतरेपर यह लीला होती है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कुछ समय इस स्थानपर भी रहे थे।

यह लीला केवल एक दिनकी है। मङ्गलाचरणके साथ लीला आरम्भ होती है। इस लीलामें केशवराम-रचित कथाका पाठ होता है तथा प्रह्लादका जन्म (आश्विन कृष्ण पञ्चमीको) एवं उनके विद्यारम्भ-प्रकरणमें गुरु शुक्राचार्यके यहाँ पाटीपर 'राम-राम, कृष्ण-कृष्ण एवं गोपाल' लिखना तत्पश्चात् हिरण्यकशिपुद्वारा विष देना, हाथीके पैरों-तले कुचलवाना, पर्वतसे गिराना और इसके साथ ही आगमें जलाने आदिकी लीलाएँ होती हैं। इसके बाद हाथ-पैर बाँधकर प्रह्लादजी हिरण्यकशिपुके सामने लाये जाते हैं। असुरराज पूछता है—*'राम ही देउ देखाई, जो तो ही राखन हार हैं'*। तब खम्भ फाड़कर नृसिंह प्रकट होते हैं। *'नरदेह-मुख हरिको धर्यो।'* नृसिंहभगवान् असुरको गोदमें लिटा लेते हैं और उदर विदारकर वध करते हैं। पुनः हर्षोल्लासपूर्वक प्रह्लादका राज्याभिषेक और अन्तमें आरती होती है।

वामनलीला—

भाद्रपद शुक्ला १२को वामनद्वादशीके दिन यह लीला की जाती है। यह एक दिनकी लीला है। काशीमें 'चित्रकूट' नामक स्थान है। यहाँ एक भवनके द्वारपर वैकुण्ठलोक बनता है, जहाँ विष्णु और लक्ष्मी विराजते हैं और ब्रह्मा, महेश, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि देवता खड़े होकर विष्णुभगवान्की स्तुति करते हैं। भक्त-मण्डली वामनभगवान्के भजन गाती है।

भजन समाप्त होनेपर आकाशवाणी होती है; फिर लीला चित्रकूट-भवनसे चलकर पासहीमें स्थित धूपचण्डी तालाबके तटपर आती है। यहाँ समुद्रमन्थन-लीला होती है। रत्नोंकी झाँकीके बाद लीला पुनः चित्रकूट-भवनके सामने मैदानमें आ जाती है। यहाँ राजा बलि यज्ञ करते हैं। वामनभगवान् पधारते हैं और दानमें तीन पग धरती माँगते हैं। राजा संकल्प करना चाहते हैं, पर शुक्राचार्य मना करते हैं। जब राजाको रोकनेके लिये शुक्राचार्य कमण्डलुकी टोंटीमें घुस जाते हैं, तब भगवान् टोंटीमें एक कुशसे पानी गिरनेके लिये छिद्र करना चाहते हैं, उस समय शुक्राचार्यकी एक आँख फूट जाती है। अब राजाद्वारा संकल्प होता है। वामनभगवान् दो पगोंमें आकाश-पाताल नाप लेते हैं, तीसरे पगमें राजा बलि अपने-आपको प्रस्तुत करता है। भगवान् उसके सिरपर पैर रख देते हैं। राजा पातालमें चला जाता है और वह भगवान्के चरण पकड़ लेता है। भगवान् उसे अभयदान देते हैं, तत्पश्चात् आरती सम्पन्न होती है।

फागलीला—

फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशीको सायंकाल नरहरिपुरामें, नरसिंह-चबूतरापर लीला आरम्भ होती है। सीता, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नका शृंगार होता है, हनुमान्जीका भी शृंगार होता है। मङ्गलाचरणके बाद होली आदि खेलते हैं। तीन 'तामझाम' लाये जाते हैं, जिनमें एकपर राम-लक्ष्मण, दूसरेपर भरत-शत्रुघ्न और तीसरेपर श्रीहनुमान्जी विराजते हैं। जानकीजी वहीं रह जाती हैं। यहाँसे शोभायात्रा प्रारम्भ होती है। नरहरिपुरासे दारानगर-विश्वेश्वरगंज-भैरोनाथ-चौखम्बा-ठठेरी बाजार-लक्खी चौतरा-रानी कुआँ-चौक-नारियल बाजार होते हुए रेशम कटरा पहुँचती है और अन्तमें आरतीके साथ लीला सम्पन्न होती है।

श्राद्ध-समीक्षा

श्राद्धसे जगत्की तृप्ति

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

आज श्राद्धकर्मपर श्रद्धा कम होती जा रही है। कारण यह है कि शास्त्रसे जनताका सम्पर्क कम होता जा रहा है। आज आस्तिक जनता भी प्रायः इतना ही समझ पाती है कि श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति अपने मृत माता-पिता आदि सम्बन्धियोंको अन्न-पानी देकर तृप्त कर रहा है। यह कम लोग जानते हैं कि वह व्यक्ति अकेले अपने सगे-सम्बन्धियोंको ही नहीं, अपितु ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभी प्राणियोंको तृप्त कर रहा है। ब्रह्मपुराणने कहा है—

एवं विधानतः श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः॥

(चतुर्वर्गचिन्तामणि परि० ख० अ०१)

अर्थात् जो व्यक्ति अपनी सम्पत्तिके अनुसार शास्त्रकी बतायी विधिसे श्राद्ध करता है, वह [केवल अपने सगे-सम्बन्धियोंको ही नहीं, अपितु] सम्पूर्ण संसारको संतृप्त कर देता है।

श्राद्धसे पूजा भी हो जाती है—

तृप्ति ही नहीं, उस व्यक्तिके द्वारा किये गये इस श्राद्धसे जगत्के पूज्योंकी पूजा भी हो जाती है। तीनों अग्नि, तीनों लोक, तीनों देव, चारों आश्रम, चारों वर्ण, चारों पुरुषार्थ, चारों दिशाएँ, चारों युग और वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध-रूप चतुर्व्यूह भी पूजित हो जाते हैं—

तेषां त्रयः पूजिताश्च भविष्यन्ति तथाग्नयः।
पूजिताश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
पूजिताश्च भविष्यन्ति चतुरात्मा तथाप्यहम्॥

(वाराहपुराण)

सबसे बढ़कर श्रेयस्कर—

इस तरह श्राद्धसे एक ओर सम्पूर्ण जगत्को तृप्ति मिल जाती है और दूसरी ओर सभी पूज्यवर्ग भी पूजित हो जाते हैं। श्राद्धकी यह महनीय महिमा आँककर ही शास्त्रने घोषणा कर दी है कि श्राद्धसे बढ़कर और कोई श्रेयस्कर कर्म नहीं है—

श्राद्धात् परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः॥

(सुमन्तु)

श्राद्धकर्ताको भी लाभ—

जो श्राद्ध सम्पूर्ण संसारको तृप्त कर सकता है, वह अपने अनुष्ठाताकी उपेक्षा कैसे कर सकता है? वह अपने अनुष्ठाताकी आयुको बढ़ा देता है, पुत्र प्रदानकर वंश-परम्पराको अक्षुण्ण रखता है, धन-धान्यका अम्बार लगा देता है, शरीरमें बल-पौरुषका संचार करता है, पुष्टि प्रदान करता है और यशका विस्तार करता है—

आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

(यम-स्मृति)

श्राद्धसे मुक्ति—

इस तरह श्राद्ध सांसारिक जीवनको सुखमय बनाता है, परलोकको सुधारता है और अन्तमें मुक्ति भी प्रदान करता है—

योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्याद् वै शान्तमानसः।
अपेतकल्मषो नित्यं याति नावर्तते पुनः॥

(कूर्मपुराण)

श्राद्धग्रन्थके पाठसे भी लाभ—

शास्त्रने श्राद्धकी आवश्यकता यह कहकर भी व्यक्त की है कि यदि कोई श्राद्धकी विधि बतानेवाले ग्रन्थका पाठ करता है, तो इससे उसकी भी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं एवं अमरता भी प्राप्त होती है—

इमं श्राद्धविधिं पुण्यं कुर्याच्चापि पठेच्च यः।
स सर्वकामसंयुक्तो ह्यमृतत्वं च विन्दति॥

जो श्राद्ध करता है, जो इसके विधि-विधानको जानता है, जो श्राद्ध करनेकी सलाह देता है और जो 'श्राद्धका

अनुमोदन करता है—इन सभीको श्राद्धका फल मिल जाता है।

श्राद्ध न करनेसे हानि-ही-हानि—

किसी अत्यन्त उपादेय वस्तुके न करनेसे होनेवाली हानियोंका आँकना कठिन नहीं होता, किंतु शास्त्रने श्राद्धके न करनेसे होनेवाली जो हानियाँ बतायी हैं, उन्हें जानकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अतः श्राद्ध-तत्त्वसे परिचित होना और इसके अनुष्ठानके लिये तत्पर रहना अत्यन्त आवश्यक है।

शास्त्रसे यह सामान्य बात ज्ञात होती है कि मृत व्यक्तिका अपने पुत्र आदि सगे-सम्बन्धियोंसे इतना गहरा लगाव होता है कि इनके दिये बिना उसे न तो अन्न मिल सकता है और न पानी। जब मृत व्यक्ति इस महायात्रामें अपना स्थूल शरीर भी नहीं ले जा सकता है, तब अन्न और पानी कैसे ले जा सकेगा? इस समय उसके सगे-सम्बन्धी जो कुछ देते हैं, वही उसे मिलता है। इसलिये शास्त्रने मरनेके बाद सबसे पहले उसे स्नान कराकर वस्त्र आदिसे भूषित करके टिकठी उठानेके पहलेसे ही उसे पिण्ड-पानीके रूपमें खाने-पीनेकी व्यवस्था कर दी है। रोना-धोना इसलिये मना कर दिया है कि दाहकर्मके पहले जो कुछ इसके सगे-सम्बन्धी देते हैं, वही उसे खाना-पीना पड़ता है। पिण्ड-पानी न देकर यदि आँसू और कफ देंगे तो इन्हें ही बेचारेको खाने-पीनेके लिये विवश होना पड़ता है।

यह तो मृत व्यक्तिकी इस महायात्रामें रास्तेके भोजन-पानीकी बात हुई। परलोक पहुँचनेपर भी उसके लिये वहाँ न अन्न होता है और न पानी। यदि सगे-सम्बन्धी न दें, तो भूख-प्यासससे उन्हें वहाँ बहुत ही दारुण दुःख होता है—

लोकान्तरेषु ते तोयं लभन्ते नान्नमेव च।
दत्तं न वंशजैर्येषां ते व्यथां यान्ति दारुणाम्॥

(सुमन्तु)

यह तो हुई श्राद्ध न करनेसे मृत प्राणीके कष्टोंकी कथा। श्राद्ध न करनेवालेको भी पग-पगपर कष्टका सामना करना पड़ता है।

श्राद्ध न करनेवालेको कष्ट—

मृत प्राणी बाध्य होकर श्राद्ध न करनेवाले अपने सगे-सम्बन्धियोंका रक्त चूसने लगता है—

श्राद्धं न कुरुते मोहात् तस्य रक्तं पिबन्ति ते।

(ब्रह्मपुराण)

साथ-ही-साथ वे शाप भी देते हैं—

पितरस्तस्य शापं दत्त्वा प्रयान्ति च।

(नागरखण्ड)

फिर इस अभिशप्त परिवारको जीवनभर कष्ट-ही-कष्ट झेलना पड़ता है। उस परिवारमें पुत्र नहीं उत्पन्न होता, कोई नीरोग नहीं रहता, लम्बी आयु नहीं होती, किसी तरह कल्याण नहीं प्राप्त होता और मरनेके बाद नरक जाना पड़ता है—

(क) न तत्र वीरा जायन्ते नारोगा न शतायुषः।
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम्॥

(हारीतस्मृति)

(ख) श्राद्धमेनं न कुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते।

(विष्णुस्मृति)

श्राद्ध न करनेवालेकी अकर्मण्यतासे सारा-का-सारा संसार ही तृप्तिके सुखसे वंचित हो जाता है।

श्राद्ध शब्दका अर्थ—

अभियुक्तोंने बताया है कि 'श्राद्ध' शब्द 'पङ्कज' शब्दकी तरह योगरूढ है। 'पाचक' शब्दकी तरह यौगिक नहीं[1]। यौगिक शब्द अपनी योगशक्तिके[2] द्वारा प्रकृति और प्रत्ययसे

१-श्रद्धया दीयते यस्मात् तेन श्राद्धं निगद्यते इति बृहस्पतिवाक्ययोगप्रदर्शनार्थम्। तेन अन्यत्र प्रयोगाभावाद् योगशब्दाच्च योगरूढोऽयं श्राद्धशब्दः॥ (श्राद्धप्र०, पृ० ७)

२-शक्तिस्त्रिधा—(१) रूढिः, (२) योगः, (३) योगरूढिश्च। (वैयाकरणसिद्धान्त लघुमन्जूषा १। ३९)

लभ्य अर्थको बेरोक-टोक सर्वत्र बताते रहते हैं। जैसे—'पाचक' शब्द यौगिक है। यह शब्द 'पच्' धातुसे ण्वुल् (अक) प्रत्यय लगकर बनता है। पच् धातुका अर्थ है—पाक-क्रिया और ण्वुल्‌का अर्थ है—उस पाक-क्रियाका कर्ता '**पचतीति पाकः**'। जो-जो पाक-क्रियाका सम्पादन करता है, सबको 'पाचक' कहा जाता है। कोई चेतन पकाता है तो उसको भी पाचक कहा जाता है और कोई अचेतन लवणभास्कर आदि चूर्ण पकाता है, तो उसे भी पाचक कहा जाता है। इस तरह '**पचतीति पाचकः**' इस व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थपर कहीं कोई रोक-टोक नहीं लगती।

शब्दकी दूसरी शक्तिका नाम है—योगरूढ। इसमें प्रकृति-प्रत्ययसे लभ्य अर्थ गृहीत होता है, किंतु बेरोक-टोक नहीं। क्योंकि रूढि इसे एक ही अर्थमें नियन्त्रित कर देती है। इस रोकके कारण यह योगरूढ शब्द व्युत्पत्ति-लभ्य सही अर्थोंको बतानेकी क्षमता खो देता है, इसका उदाहरण है—'पङ्कज' शब्द। '**पङ्कात् जातः पङ्कजः**' इस व्युत्पत्तिसे लभ्य अर्थ है—पङ्कसे उत्पन्न हुआ। किंतु योगशक्तिसे उत्पन्न यह अर्थ रूढिसे उत्पन्न कमलरूप अर्थ-विशेषमें रूढ हो जाता है। अतः पङ्कसे उत्पन्न किसी अन्य वस्तुको पङ्कज नहीं कहा जाता। यही कारण है कि जोंकको हम पङ्कज नहीं कहते।

इसी तरह श्राद्ध शब्द योगरूढ है। श्राद्धकर्ममें श्रद्धाकी नितान्त अपेक्षा होती है। योगसे इसका अर्थ इस प्रकार होता है—वह कर्म जिसके करनेका प्रयोजन श्रद्धा हो—'**श्रद्धा प्रयोजनमस्य इति श्राद्धम्**[1]।' किंतु योगरूढ होनेके कारण मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे किये गये दान-रूप अर्थ-विशेषमें यह नियन्त्रित भी हो जाता है, अतः श्रद्धासे किये हुए सभी कर्मको हम श्राद्ध नहीं कहते। विवाह आदि माङ्गलिक कर्ममें भी श्रद्धासे बहुत कुछ दिया जाता है। इस कारण हम विवाह आदिको श्राद्ध नहीं कहते। किसीका विवाह दस दिनाङ्कको तय हुआ। किसी व्यक्तिको इस दिनाङ्कमें संदेह उत्पन्न हो गया। इसके निराकरणके लिये वह उसके पितासे यही नहीं पूछता कि आपके पुत्रका श्राद्ध दस दिनाङ्कको ही तय है न? क्योंकि हिन्दुओंके जीवनमें शास्त्र उतरा रहता है। उसे पता है कि शास्त्रने मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे दिये गये दान-कर्मको ही श्राद्ध कहा है। भला विवाह आदि माङ्गलिक कर्मोंमें इसे वह 'श्राद्ध' शब्दका प्रयोग कैसे कर सकता है? श्राद्धको योगरूढ मानकर ही इसका लक्षण शास्त्रने इस प्रकार किया है—

प्रेतान् पितॄंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्॥

(शाण्यापनि हेमाद्रिमें)

अर्थात् अपने प्रिय भोजनकी वस्तुको मृत पितरोंके उद्देश्यसे जिस कर्ममें श्रद्धापूर्वक प्रदान किया जाता है उसे 'श्राद्ध' कहते हैं—

स्मृतियोंद्वारा की गयी श्राद्धकी यह परिभाषा भी वेदके अर्थका ही अनुसरण करती है, वेदने कहा है—

इदमिद् वा उ नापरम्।

(अथर्व० १८। २। ५०)

सायणके अनुसार इसका अर्थ है—हे मृत पुरुष! (**इदं इत् वा उ**) यही तुम्हारा भोजन है जिसे श्राद्धमें हम तुम्हें दे रहे हैं। (**अपरं न**) इसके अतिरिक्त तुम्हारे भोजनका और कोई आधार नहीं है।

मृत पितरोंका श्राद्ध होता है—

जिन पितरोंको श्राद्ध-देशमें बुलानेके लिये अग्निसे प्रार्थना की जाती है, वे पितर मृत ही हो सकते हैं, न कि जीवित। अथर्ववेदका एक मन्त्र है—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥

(अथर्व० १८। २। ३४)

सायणके अनुसार इसका अर्थ है—(**ये निखाताः**) जो पितर निखनन-संस्कारके द्वारा भूमिमें गाड़कर संस्कृत

१-(क) पाणिनिके ५। १। ११० सूत्रके अन्तर्गत आये 'चूडादिभ्य उपसंख्यानम्' वार्तिकसे अण् प्रत्यय।

(ख) श्रद्धया दीयते यस्माच्छ्राद्धं तेन निगद्यते।

किये गये हैं। (**ये परोप्ताः**) जो पितर दूर देशमें काठकी तरह छोड़कर संस्कृत किये गये हैं। (**ये दग्धाः**) जो फिर अग्निमें दाह-संस्कारके द्वारा संस्कृत हुए हैं। (**ये च उद्धिताः**) जो पितर ऊपर पितृलोकमें जा पहुँचे हैं। इस तरह जिनके भिन्न-भिन्न संस्कार किये गये हैं। (**तान् आ वह**) उन पितरोंको (**हे अग्ने**) हे अग्निदेवता! (**हविषे अत्तवे**) इस हविको खानेके लिये (**आ वह**) बुला दीजिये।

पितरोंके लिये प्रयुक्त ये सब-के-सब विशेषण और आगेका लेखांश मृत पितरोंमें ही घटते हैं जीवितमें नहीं। कोई श्रद्धालु पुत्र अपने पिता आदिको भोजन करानेके लिये न तो पहले कहीं जमीनमें गाड़ता है, न दूर-देशमें काठकी तरह फेंक आता है, न अग्निमें जलाता है और न ऊपर कहीं लटका ही देता है। यदि कोई हठवश ऐसा करता है तो अपने माता-पिताको घोर यातना देता है और यह यातना श्रद्धावश नहीं हो सकती। ऐसा करना या तो जड़तावश हो या दुराग्रहवश।

मन्त्रोंमें अग्निदग्ध (ऋक् १०। १५। १४), अथर्ववेद (१०। १५। १४), अग्निष्वात्त (१९। ५८) आदि विशेषण मिलते हैं। वे भी मृत पितरोंमें ही अन्वित हो सकते हैं, जीवित नहीं। इनका अर्थ बदल भी नहीं सकता। शतपथने कहा है—'अग्निष्वात्त' उन पितरोंको कहते हैं, जिन्हें अग्नि जलाकर स्वाद लेता है—**यानग्निरेव दहन् स्वदयति, ते पितरोऽग्निष्वात्ताः** (शत० का० २)

जीवित पिता आदिके श्राद्धका निषेध—

शास्त्रने जीवित माता-पिता आदिके श्राद्धका निषेध किया है, यह यथार्थ प्रतीत होता है।

किसीके पिता मर गये हैं, प्रपितामह भी मर गये हैं परंतु पितामह जीवित हैं? ऐसी स्थितिमें व्यक्ति श्राद्ध किसका करे, किसका न करे? इसका स्पष्टीकरण करते हुए शास्त्रने यह कहा है कि श्राद्ध मृत पिता और मृत प्रपितामहका करे, पितामहका नहीं। क्योंकि ये अभी जीवित हैं। पितामहका श्राद्ध इसलिये निषिद्ध है कि ये अभी जीवित हैं, मृत नहीं। मृत तो पिता और प्रपितामह हैं। अतः इन्हीं दोनोंका श्राद्ध होना चाहिये। यह शास्त्रका आदेश है—

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत् प्रपितामहम्॥

(मनु० ३। २२१)

इसी तरह किसीके पिता अभी जीवित हैं और प्रपितामह तथा पितामह मर गये हैं, ऐसी परिस्थितिमें शास्त्र कहता है कि पुत्र पिताका श्राद्ध न करे क्योंकि ये अभी जीवित हैं। मृत हैं पितामह आदि। अतः पितामह, प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंका श्राद्ध करे—

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्।

(मनु० ३। २२०)

इस शास्त्रका तात्पर्य जीवित माता-पिताके श्राद्धके निषेधमें तीन पीढ़ी ही पर्यवसित होता है।

यहाँ मनुने एक विकल्प बताया है कि मृत पितामह आदिकी भूख-प्यास मिटानेके लिये जो तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराने-हेतु निमन्त्रण दिया जाता है, वह तीन ब्राह्मणोंको न देकर दोको ही दे, एक ब्राह्मणके स्थानपर अपने पिताको ही भोजन करा दे।

ध्यान देनेकी बात यह है कि इस विकल्पमें तीन ब्राह्मणोंको भोजन करानेकी जगहपर दो ब्राह्मणोंको भोजन कराये और तीसरे ब्राह्मणकी जगह अपने जीवित पिताको ही भोजन करानेका विधान है। अर्थात् ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जैसे ब्राह्मणोंको तृप्ति मिलती है, वैसे पितरोंको भी तृप्ति मिल जाती है, वैसे पिताको भोजन करानेसे भी पितरोंकी तृप्ति सम्भव है।

किंतु इस विकल्पसे यह सिद्ध नहीं होता कि जीवित पिताका श्राद्ध शास्त्र-सम्मत है। क्योंकि यहाँ पिताको ब्राह्मणोंकी जगहपर भोजन कराया जा रहा है, न कि उनका श्राद्ध किया जा रहा है, नहीं तो जो दो ब्राह्मणोंको भोजन कराया जा रहा है, उन दोनोंको भी श्राद्ध कराया जा रहा

है यह प्रत्यक्षतः विरुद्ध है।

जीवितोंके श्राद्धका शब्दतः भी निषेध—

शास्त्रने जीवित माता-पिता आदिके श्राद्धका शब्दतः भी निषेध किया है। इस सम्बन्धमें हेमाद्रिने विष्णुस्मृतिका एक वचन उद्धृत किया है—

पितरि पितामहे प्रपितामहे जीवति, नैव कुर्यात्।

ब्राह्मणोंके भोजनसे पितरोंकी तृप्ति—

वेदने बताया है कि ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे वह पितरोंको प्राप्त हो जाता है—

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु
विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।

(अथर्व० ४। ३४। ३८)

(**इमम् ओदनम्**) इस ओदनोपमभक्षित भोजनको (**ब्राह्मणेषु नि दधे**) ब्राह्मणोंमें स्थापित कर रहा हूँ। यह भोजन विस्तारसे युक्त है और स्वर्गलोकको जीतनेवाला है। इस तथ्यको स्पष्ट करते हुए मनुजीने लिखा है—

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः॥

(मनु० १। ९५)

अर्थात् जिस ब्राह्मणके मुखसे देवता 'हव्य' को और पितर 'कव्य' को खाते हैं, उन ब्राह्मणोंसे बढ़कर कौन होगा?

पितरोंको श्राद्धान्न मिलता कैसे है?

यहाँ ऐसी जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि 'श्राद्धमें दिये गये पदार्थ पितरोंको मिलते कैसे हैं?' क्योंकि कर्म भिन्न-भिन्न होते हैं और तदनुसार मरनेके बाद गतियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। कोई देवता बन जाता है, कोई पितर, कोई प्रेत, कोई हाथी, कोई चींटी, कोई चिनारका वृक्ष और कोई तृण। इस छोटेसे पिण्डसे हाथीका पेट भर सकता है क्या? चींटीपर वह पिण्ड पड़े तो चींटी दम ही तोड़ देगी। तृण उसे कैसे खा सकेगा? देवता अमृतसे तृप्त होते हैं, पिण्डसे उन्हें कैसे तृप्ति मिलेगी? इन प्रश्नोंका शास्त्रने बड़ा सुलझा समाधान कर दिया है, जैसे—

(**क**) जो लोग देवलोक या पितृलोकमें पहुँचते हैं, वे मन्त्रोंके द्वारा बुलाये जानेपर उन-उन लोकोंसे तत्क्षण श्राद्धदेशमें आ जाते हैं और निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी शरीरमें सटकर भोजन कर लेते हैं। सूक्ष्मग्राही होनेसे सूक्ष्मकणोंके आघ्राणसे ही उनका भोजन हो जाता है, वे तृप्त हो जाते हैं। भगवती सीताने ससुर आदि तीन पुरुषोंको श्राद्धमें भोजनके अवसरपर तीन ब्राह्मणोंको उनके शरीरमें सटकर बैठते देखा था। यह दृश्य तब उपस्थित हुआ था, जब भगवान् रामने श्राद्ध करते समय अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका आवाहन किया था। यह दृश्य देखते ही सीताजी तुरंत वहाँसे हट गयीं। वे डर गयी थीं कि उनके ससुर आदि जो भोजन करने आये हैं, वे इस वनवासी वेषको देखकर सहन न कर पायेंगे। इसे देखते ही वे फिर मूर्च्छित हो जायँगे। इस तरहकी घटना पहले घट चुकी थी। वन जाते समय जब सीता अपने अङ्गोंसे अलंकार उतारने लगीं तो यह देखते ही दशरथजीको इतनी वेदना हुई कि वे तुरंत मूर्च्छित हो गये। इस बारका वेष तो बिलकुल वनवासिनीका था? इसे देख उन्हें पहलेसे भी अधिक वेदना होगी। (ब्रह्माण्डपु० एवं पद्मपु०)

(**ख**) पितरोंमें कर्मानुसार कुछ पितर देवलोक जाते हैं और कुछ पितृलोक। कर्मवश ये अन्तरिक्षमें वायवीय शरीर धारणकर रहते हैं। अन्तरिक्षमें रहनेवाले इन पितरोंको 'श्राद्धका काल' आ गया है, यह सुनकर ही तृप्ति हो जाती है। ये 'मनोजव' होते हैं। अर्थात् इन पितरोंकी गति मनकी गतिकी तरह होती है। वे स्मरणसे श्राद्धदेशमें आ जाते हैं और ब्राह्मणोंके साथ खाकर, भोजनकर तृप्त हो जाते हैं। इनको सब लोग इसलिये नहीं देख पाते हैं कि इनका शरीर वायवीय होता है—

तृप्यन्ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्।
अन्योऽन्यं मनसो ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः॥
तैर्ब्राह्मणैः सहाश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥

(हेमाद्रिधृत कूर्मपुराण-वचन)

कभी-कभी पिता आदि तीन पितरोंके लिये तीन योग्य ब्राह्मण नहीं मिलते। ऐसी स्थितिमें एक ही योग्य ब्राह्मणको

भोजन कराया जाता है। इस अवसरपर प्रश्न उठता है कि उन तीनों पितरोंके लिये तीन ब्राह्मण तो मिले नहीं, फिर एक ही ब्राह्मण-शरीरमें वे तीनों कैसे संलग्न होंगे और कैसे भोजन पायेंगे? इस प्रश्नके उत्तरमें शास्त्रने बताया है कि तब वे तीनों पितर उस एक ही ब्राह्मण-शरीरमें संलग्न हो जाते हैं। पिता ब्राह्मणके हृदयमें, पितामह बायें अङ्गमें, प्रपितामह दायें अङ्गमें और पिण्ड-भक्षक पितर पीछे भागमें संलग्न होकर भोजन पा लेते हैं—

उरस्थाः पितरस्तस्य वामपार्श्वे पितामहाः।
प्रपितामहा दक्षिणतः पृष्ठतः पिण्डभक्षकाः॥

(हेमाद्रिधृत कूर्मपुराण)

उन पितरोंको सब लोग इसलिये नहीं देख पाते कि उनका शरीर वायवीय होता है—'**वायुभूताः**'।

भगवान्ने गीतामें यही बात कही है—

भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥

(गीता १५। १०)

ज्ञानवान् तो उन्हें देखते ही हैं।

(ग) हाँ, कुछ परिस्थितियोंमें पितरोंका श्राद्धदेशमें आना सम्भव नहीं होता, ऐसी स्थितिमें विश्वनियन्ताने ऐसी व्यवस्था कर रखी है, जिसके अनुसार श्राद्धकी सामग्री उनके अनुरूप होकर उनके पास पहुँच जाती है। इस व्यवस्थाके अधिपति हैं—पितरों आदिके अधिष्ठाता अग्निष्वात्त आदि—'**अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः।**'

गोत्र और नामके उच्चारणके साथ जो अन्न-जल आदि सामग्री पितरोंको दी जाती है, उसकी, अनुरूप—समुचित व्यवस्था अग्निष्वात्त आदि आजानज पितर करते रहते हैं। यदि पिता देवता बन गये हैं तो श्राद्धका अन्न उन्हें 'अमृत' के रूपमें परिणत होकर मिलता है और यदि गन्धर्व बन गये हैं तब वह अन्न नाना भोगोंके रूपमें प्राप्त होता है। यदि पशु बन गये हैं तो तृणके रूपमें मिलेगा। इसी तरह नागयोनिमें वह अन्न वायु-रूपमें, राक्षस बन जानेपर आमिष-रूपमें, दानवयोनिमें मांस-रूपमें और मनुष्य बन जानेपर विविध प्रकारके भोग्य रसके रूपमें परिणत होकर मिलता है—

देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः।
तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति॥
गन्धर्वे भोग्यरूपेण पशुत्वेऽपि तृणं भवेत्।
श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति॥
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम्।
दानत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरोदकम्।
मनुष्यत्वेऽन्नपानादिनानाभोगरसो भवेत्॥

(देवल, चतुर्वर्गचिन्तामणिधृत)

आज भी वैसी व्यवस्था—

विश्वनियन्ताने मृत प्राणीकी तृप्तिके लिये जैसी व्यापक व्यवस्था बना रखी है, उसी तरहकी आंशिक व्यवस्था आज भी विश्वमें चालू है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रके भिन्न-भिन्न सिक्के होते हैं। भारतमें रुपये-पैसे हैं, रूसमें रूबल, इंग्लैंडमें पौंड, सिलिंग, पेन्स और अमेरिकामें डालर तथा अरब राष्ट्रोंमें दीनार।

प्रत्येक देशमें उसका अपना ही सिक्का चलता है। दूसरे देशमें वह नहीं चलता। फिर भी प्रत्येक देशका दूसरे देशोंके साथ जो लेन-देन चलता है, उसकी व्यवस्था 'विश्व-बैंक' के द्वारा होती है। प्रत्येक देशमें 'एक्सचेंज ऑफिस' होता है, जो दूसरे देशके सिक्केके मूल्यको आँककर अपने देशके सिक्केके रूपमें बदल देता है। इंग्लैंडमें रुपये भेजने हैं, इंग्लैंडके किसी व्यक्तिने भारतमें आये अपने सदस्यको कुछ पौंड भेजे, तो यहाँका एक्सचेंज ऑफिस उनके अनुरूप रुपये-पैसे बनाकर देता है। रूस उसे रूबल बनाकर देता है और अमेरिका डालर बनाकर। जब नगण्य मनुष्य ऐसी व्यवस्था कर सकता है तब विश्वनियन्ता अपनी समर्थ-व्यवस्थामें श्राद्धके अन्नको भिन्न-भिन्न रूपोंमें परिणतकर अधिकारीके पास पहुँचानेकी व्यवस्था नहीं होती तो उसकी कमी मानी जाती।

धनाभावमें भी श्राद्ध आवश्यक—

पिछली पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जाता है कि श्राद्ध करना अपरिहार्य है, किंतु धनकी परिस्थिति तो एक-सी रहती नहीं। कभी-कभी धनका अभाव तो हो ही जाता है। ऐसी

परिस्थितिमें जबकि श्राद्धका अनुष्ठान अपरिहार्य है, श्राद्ध कैसे किया जाय? यह समस्या आ जाती है।

शास्त्रने धनके अनुपातसे कुछ व्यवस्था की है, जैसे—

(१) यदि अन्न-वस्त्रके खरीदनेमें पैसोंका अभाव हो, तो उस परिस्थितिमें शाकसे श्राद्ध कर देना चाहिये—

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि।

(२) यदि शाक खरीदनेके लिये पैसे न हों, तो तृण-काष्ठ आदि बेचकर पैसे इकट्ठा करे और उन पैसोंसे शाक खरीदकर श्राद्ध करे—

तृणकाष्ठार्जनं कृत्वा प्रार्थयित्वा वराटकम्।
करोति पितृकार्याणि ततो लक्षगुणं भवेत्॥

(पद्मपु० सृष्टिखं० ५२। ३१०)

इतने श्रमसे किये गये श्राद्धका फल लाख-गुना होता है।

(३) देश-विशेष और काल-विशेषके कारण लकड़ियाँ नहीं मिलतीं तो ऐसी परिस्थितिमें शास्त्रने बताया है कि घाससे श्राद्ध हो सकता है। घास काटकर गायको खिला दे। यह व्यवस्था पद्मपुराणने दी है। इसके साथ ही इसने इस सम्बन्धकी एक छोटीसी घटना प्रस्तुत की है—

एक व्यक्ति अभावसे अत्यन्त ग्रस्त था। उसके पास इतना पैसा नहीं था कि वह शाक खरीद सके और श्राद्ध कर सके। आज ही श्राद्धकी तिथि थी। कुतप-काल भी आ पहुँचा था। इस कालके बीतनेपर श्राद्ध नहीं हो सकता था। बेचारा घबरा गया, रो पड़ा। श्राद्ध करे तो कैसे करे? एक विद्वान्ने उसे सुझाया—अभी कुतप-काल है, शीघ्र ही घास काटकर पितरोंके नामपर गायको खिला दो। वह दौड़ा-दौड़ा गया और घास काटकर लाया तथा गायोंको खिला दिया। इस श्राद्धके फलस्वरूप उसे स्वर्ग मिला—

एतत्पुण्यप्रसादेन गतोऽसौ सुरमन्दिरम्।

(पद्मपु० सृ०खं० ५२। ३१९)

(४) ऐसी भी परिस्थिति आ जाती है कि घासका भी मिलना सम्भव नहीं होता, तब श्राद्ध कैसे करे?

—इसके लिये शास्त्रने यह समाधान किया है कि श्राद्धकर्ताको देश-कालवश घासका मिलना भी सम्भव न हो तो श्राद्धकर्ता एकान्त-स्थानमें चला जाय, दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर निम्नलिखित श्लोक बोलकर पितरोंसे प्रार्थना करे—

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य-
च्छ्राद्धोपयोगि स्वपितॄन् नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य॥

अर्थात् हे मेरे पितृगण! मेरे पास श्राद्धके उपयुक्त न तो धन है, न धान्य आदि और कुछ। हाँ मेरे पास आपके लिये श्रद्धा और भक्ति है। मैं इन्हींके द्वारा आपको तृप्त करना चाहता हूँ। आप तृप्त हो जायँ। (मैंने शास्त्रकी आज्ञाके अनुरूप) दोनों भुजाओंको आकाशमें उठा रखा है।

किसी-न-किसी तरह श्राद्ध करना ही है—

उपर्युक्त अनुकल्पोंसे स्पष्ट हो जाता है कि किसी-न-किसी तरह श्राद्ध अवश्य करे। शास्त्रने स्पष्ट शब्दोंमें श्राद्धका विधान भी दिया है और न करनेका निषेध भी किया है। अतः श्राद्ध करे ही, श्राद्ध छोड़े नहीं।

ऋतौ मूलैः फलैर्वापि तथाप्युदकतर्पणैः।
पितृतृप्तिं प्रकुर्वीत ....॥
नैव श्राद्धं विवर्जयेत्।

(धर्मसिन्धुमें उद्धृत)

जन्म-मरणका कार्य (जनसंख्याका नियन्त्रण) मनुष्यके हाथमें नहीं है, प्रत्युत सृष्टिकी रचना करनेवाले ईश्वर और प्रकृतिके हाथमें है। ईश्वर और प्रकृतिके विधानसे जनसंख्याका नियन्त्रण अनादिकालसे स्वतः-स्वाभाविक होता आया है। अगर मनुष्य उनके विधानमें हस्तक्षेप करेगा तो इसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा।

ग्रामोत्थानसे सम्पूर्ण क्रान्ति

(श्रीजगदीशचन्द्रजी पन्त)

ग्रामीण उर्जाका स्रोत—गोवंश

एक अनुमानके अनुसार भारतके ग्रामीण क्षेत्रोंमें बैलोंद्वारा उपलब्ध की जा रही उर्जा लगभग ४०,००० मेगावाटके बराबर है। इसके बावजूद पशुओंकी नस्ल-सुधारकी वर्तमान नीति एवं प्रक्रिया उर्जा-उपलब्धिको बढ़ानेकी न होकर केवल दुग्ध-उत्पादनको बढ़ानेके लिये ही है। इसके परिणामस्वरूप भैंस-प्रजातिको प्रोत्साहन मिला है, क्योंकि ये गायकी अपेक्षा दूध अधिक देती हैं और इनके दूधमें घी भी अधिक मात्रामें होता है; इसी कारण गायका दूध गुणात्मक दृष्टिसे अच्छा होनेपर भी भैंसके दूधसे कम कीमतपर बिकने लगा। ट्रैक्टरोंके बढ़ते उपयोगके कारण तथा नस्ल-सुधार-नीतिकी अदूरदर्शिताके कारण बैलों एवं अन्य नर-प्रजातियोंकी उपेक्षासे मांसके व्यापारको बढ़ावा मिल रहा है, जिसे निर्यातके कारण और भी विशेष प्रोत्साहन मिला है। इसके कारण दूध देनेवाली भैंस और गायोंके दूध निकालनेकी प्रक्रिया भी बड़ी क्रूर और अमानवीय हो गयी है। परम्परागत विधिके अनुसार पहले बच्चेको दूध पिलाया जाता था, उसके पश्चात् गाय अथवा भैंसका दूध दुहा जाता था, जिससे ममता-प्रेरित प्राकृतिक हारमोनोंके स्रावके फलस्वरूप गाय और भैंस दूध दिया करती थीं, परंतु अब यान्त्रिक विधिसे भैंस एवं गायोंको इंजेक्शनद्वारा दूध देनेके लिये मजबूर किया जाता है और गम्भीर पीड़ाकी परिस्थितिमें उनका दूध निकाला जाता है। बाजारू-संस्कृतिका यह अमानवीय कृत्य इस देशपर हावी हो जानेके कारण आज नित्यप्रति हमारे ग्रामीण उर्जाका सुगम स्रोत धीरे-धीरे सूख रहा है; जबकि आयातित डीजलके दाम दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाले हैं और उसकी माँग भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जायगी। सर्वनाशका यह खेल आज हमारी आँखोंके सामने बड़े नियोजित ढंगसे बहुत बड़े पैमानेपर नयी सोच-समझके अनुसार होता हुआ प्रतीत हो रहा है।

परम्परागत खेती-बारी—

भारतकी परम्परागत कृषि-व्यवस्था जो टिकाऊ थी और इस देशकी संस्कृतिके अनुरूप थी—वह गाय और बैलोंपर केन्द्रित थी। हमारे ऋषियोंने मूलतः गोवंशके वधका निषेध किया। ग्रामीण उर्जाके स्रोत बैलके संवर्धनके लिये यह आवश्यक भी था, क्योंकि उसीकी उर्जासे कृषिका विस्तार सम्भव था और तभी अकाल-जैसी परिस्थितियोंके उत्पन्न होनेपर देशको बचाया जा सकता था। गायका दूध परिवारकी आवश्यकताके लिये ही था बिक्रीके लिये नहीं, जिसके फलस्वरूप महिलाओं और बच्चोंके स्वस्थ रहनेकी पक्की गारंटी रहती थी। गौकी सेवा महिलाएँ और बच्चे किया करते थे। पुरुष कृषि-कार्यके साथ-साथ उन्हें चराने तथा उनके व्यापारमें अपना समय लगाते थे, ताकि गोवंशका प्रसार हो। भारतीय संस्कृतिके साक्षात् प्रतीक वासुदेव श्रीकृष्णने यों ही गोप-गोपियोंके साथ अपना बचपन नहीं बिताया था—गोवंशके प्रचारकी उनकी निश्चित योजना थी, भारतको महान् भारत बनानेके लिये। गायोंको चरानेके लियें गाँवमें गोचर हुआ करते थे, जो स्थानीय भूमिहीन कृषक मजदूरोंको पीनेका पानी तथा ईंधन एवं पशुओंको मुफ्त चारा उपलब्ध कराते थे। परिवारोंमें पल रही गायें जब दूध देना बंद कर देती थीं, तब उन्हें गौशालाओंको दान कर दिया जाता था। गौशालाएँ और गोचरभूमि क्रमशः ग्रामोद्योग और कृषिके केन्द्र-बिन्दु थे।

पीनेके पानी और ईंधनकी समस्या—

भैंसके दूधके फलते-फूलते व्यापारके फलस्वरूप गायोंकी सेवा, गौशालाओं एवं गोचरभूमिके संरक्षण-संवर्धनकी धज्जियाँ उड़ गयी हैं, इसके परिणामस्वरूप भारतकी टिकाऊ कृषि-व्यवस्था—खेती-बारी आज खतरेमें पड़ गयी है। टिकाऊ कृषि-व्यवस्थाके कारण हर गाँवके तालाब और कुएँ वर्षभर मनुष्यों और पशुओंको पर्याप्त पीनेका पानी उपलब्ध कराते थे। खेतोंमें उत्तम प्रकारकी प्राकृतिक खाद जो गोबरसे बनती थी, इस्तेमाल होती थी तथा खेतोंकी उर्वरा-शक्ति बरकरार रहती थी। गायके घी, दही, दूध, गोमूत्र और गोबरके समुचित अनुपातसे बने पञ्चगव्यको वैज्ञानिकोंने सबसे प्रभावी कीटनाशक औषधि माना है।

आयुर्वेदके अनुसार कई बीमारियोंकी औषधिरूपमें पञ्चगव्यका इस्तेमाल किया जाता है। रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाइयोंके अधिकाधिक प्रयोगसे आज खेतोंमें बहुत अधिक सिंचाई करनी पड़ती है और साथ ही खेतोंकी उर्वरा-शक्तिका भी दिन-प्रतिदिन क्षरण होता जा रहा है। गाँवोंके तालाब और कुएँ पानीकी अत्यधिक खिंचाईके कारण सूखते जा रहे हैं और पशु तथा आदमीके पीनेके लिये भी आज ग्रामीण क्षेत्रोंमें शुद्ध पानी उपलब्ध नहीं है। इस घटनाक्रमके लिये भैंसके दुग्धके व्यापारको दोष नहीं दिया जा रहा है, वरन् उसके फलस्वरूप नासमझीमें छोड़ी गयी गोसेवाके दृष्टिकोणको इसके लिये जिम्मेदार माना जा रहा है। इसका उदाहरण है यह प्रचलित कहावत—'जब बाजारमें दूध मिल जाता है तो घरमें गाय पालनेकी क्या जरूरत है।'

आधुनिक अर्थशास्त्रियोंका यह तर्क कि देशकी बढ़ती हुई जनसंख्याको भरपेट भोजन देनेके लिये पशुओंकी संख्या कम करनी चाहिये, यह त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। गोचर क्षेत्रकी सूखी घास और कृषि-कार्यसे उपजे अन्य प्रकारके व्यर्थ पदार्थोंको खाकर ये पशु उपयोगी गोबर तथा गोमूत्र किसानोंको देते थे, जिनसे बहुमूल्य प्राकृतिक खादके साथ-साथ सूखे उपले तैयार होते थे, जो घरोंमें ईंधनके काममें लाये जाते थे। आज जो गोबर-गैस तैयार करनेका आधुनिक तरीका है, वह भी गोवंशके गोबर और गोमूत्रके उर्जाके स्रोतपर ही अवलम्बित है। ग्रामीण क्षेत्रोंमें इसके अतिरिक्त किसी और वैकल्पिक उर्जाकी व्यवस्था भी नहीं है। वृक्षोंको काटकर ईंधनकी आपूर्ति लंबे समयतक सम्भव नहीं है। देहातमें ईंधनकी कमीके कारण ही वृक्षोंके कटनेकी दुर्घटना इस देशमें व्यापक पैमानेपर हुई है, जिससे पर्यावरण-प्रदूषणका खतरा बढ़ गया है। वृक्षारोपणके सरकारी प्रयास अन्य विकास-योजनाओंकी तरह अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं; क्योंकि उनके नियोजन और क्रियान्वयनमें लोगोंकी भागीदारी नहींके बराबर है।

आजके नरक—शहरोंके उपनगर—

गोसेवाकी उपेक्षासे देहातमें गोचर बिखर गये हैं और भूमिहीन कृषक मजदूर शहरोंकी ओर पलायनके लिये मजबूर हो गये हैं। देहातसे शहरोंकी ओर इस पलायनके कारण आज देशकी लगभग १० करोड़ जनसंख्या अनुमानतः ५ हजार उपनगरोंमें नारकीय जीवन बिता रही है। इतनी संख्यामें लोगोंने गाँव छोड़ दिया है और शहर इन्हें अपना नहीं रहे हैं—ये कहींके नहीं हैं, धरतीपर साक्षात् नरकमें रहना ही इनकी नियति बन गयी है। जनसंख्याकी अधिकताके कारण ये उपनगर बीमारियोंके कीटाणुओंके भण्डार बन गये हैं, जहाँसे इस देशके कोने-कोनेमें नित्य नयी बीमारियाँ महामारीके रूपमें फैल रही हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य-सुविधाओंकी यहाँ समुचित व्यवस्था नहीं की गयी है। यद्यपि आँकड़ोंके अनुसार इन उपनगरोंकी आबादी देशकी कुल शहरी आबादीका २५-३० प्रतिशत है, मुंबई शहरकी आधी यानी ५० प्रतिशत आबादी उसके उपनगरोंमें बसती है, दिल्लीकी ४० प्रतिशत आबादी उसके उपनगरोंमें रहती है। वह दिन दूर नहीं जब कई शहरोंकी अधिसंख्य आबादी इन उपनगरोंमें निवास करेगी। अर्थात् शहरोंका आभिजात्य जीवन और उपनगरोंका नारकीय जीवन जो वर्षोंसे आर्थिक असमानताजनित विद्वेष फैला रहा है, अब वह कबतक विद्रोहके रूपमें नहीं फूटेगा! स्पष्ट है कि मुंबईसे यह प्रक्रिया आरम्भ हो सकती है और फिर दिल्ली दूर नहीं।

अब क्या हो सकता है—

शहरी उपनगरोंकी दुर्दशाकी ओर तत्काल ध्यान देनेकी आवश्यकता है। यदि हम ग्रामोत्थानकी निश्चित संकल्पना कर इन उपनगरोंके अधिकाधिक निवासियोंको अपने नारकीय अस्तित्वको छोड़नेके लिये राजी कर सकें तो निश्चितरूपसे इस समस्याका समाधान सम्भव है। क्या इन उपनगरवासियोंको गाँव लौटकर वहाँके जातिवादी दुराग्रहोंसे मोर्चा लेनेके लिये तैयार किया जा सकता है? जबतक देशकी राजनीतिसे जातिवाद और अन्य संकीर्णताएँ नहीं निकाली जातीं, तबतक देशको आगे ले जाना मात्र मृगमरीचिका ही सिद्ध होगी और यह तभी सम्भव होगा जब राजनीतिकी जड़ अर्थात् गाँव-स्तरसे इन जातिवादी एवं अन्य संकीर्णताओंका उन्मूलन कर दिया जायगा। इसके लिये उपनगरोंके हजारों

ऐसे युवाओंका चयन किया जाना होगा जो देहात लौटकर ग्रामोत्थानका बीड़ा उठानेको राजी होंगे। इन युवाओंकी हर प्रकारकी मदद देशके प्रबुद्ध नागरिक, स्वैच्छिक संगठन, प्रवासी भारतीय आदि करनेको यदि कटिबद्ध हो जायँ तो देशमें समानता एवं सद्भावनाकी सम्पूर्ण क्रान्ति कुछ ही वर्षोंमें क्रियान्वित हो सकती है।

ग्रामोत्थान—

ग्रामोद्योगोंकी सुनिश्चित व्यवस्था किये बिना शहरी, उपनगरोंके युवाओंको देहातकी ओर लौटाना सम्भव नहीं होगा। पिछले ५० वर्षोंसे ग्रामोद्योगोंको बढ़ावा देनेकी बातें तो सुनी जाती रही हैं, लेकिन हुआ ठीक इसका उलटा ही। ग्रामोद्योग टिक नहीं पाये, अधिकतर उनकी ओर हमारी संवेदना सतही रही है। उनके लिये बाजार निर्मित नहीं हो पाये। यह कहा जा चुका है कि ग्रामोत्थानके बिना शहरी उपनगरोंमें बसे आर्थिक असमानताकी आगमें झुलसते-सुलगते युवाओंको देहात वापस नहीं लाया जा सकता है और यदि ये वापस देहात नहीं लौटे तो स्थिति उत्तरोत्तर भयावह होती जायगी। अतः ग्रामोद्योगके सामानके लिये बाजार निर्मित करना, आज हमारे नगरोंको सुरक्षित रखनेके लिये एकमात्र साधन रह गया है। इसका नियोजन और कार्यान्वयन देशके प्रबुद्ध वर्ग, स्वैच्छिक संगठन और समाजसेवी भारतीय मिलकर कर सकते हैं।

गौशाला-केन्द्रित ग्रामोद्योग—

ग्रामोद्योगके लिये एक सुदृढ़ आधारस्तम्भकी आवश्यकता है और वह आधारस्तम्भ बन सकता है 'गौशाला', जहाँ परिवारोंमें पल रही वे गायें और भैंसें इकट्ठी होंगी, जिन्होंने दूध देना बंद कर दिया होगा। उनके गोबर-गोमूत्रसे उत्तम प्रकारकी प्राकृतिक खाद और कीटनाशक दवाइयोंके साथ-साथ रसोई-गैस भी पैदा होगी, जो सीधे ही ग्रामवासियोंके घरोंमें पाइपोंद्वारा पहुँचायी जा सकेगी। इससे प्रकाशकी व्यवस्था हो सकेगी और ईंधनकी समस्याका समाधान भी किया जा सकेगा। इन गौशालाओंद्वारा क्षेत्रके पशुओंकी नस्ल-सुधारका काम भी किसानोंके आवश्यकतानुसार हाथमें लिया जा सकता है। अर्थात् गौशालाके संचालनसे ही व्यापक ग्रामीण रोजगारका सृजन हो सकेगा। तरह-तरहके ग्रामोद्योग इन गौशालाओंसे स्थानीय कच्चे मालकी उपलब्धिके आधारपर चलाये जा सकेंगे। इस बातपर विशेष ध्यान देना होगा कि ये गौशालाएँ किसी सीमित लाभमें न उलझें; अन्यथा इनकी स्थापनाका उद्देश्य विकृत हो जायगा।

गौसेवा-केन्द्रित जीवन-पद्धति—

दुर्भाग्यसे गाय आज देशमें एक समस्या बन गयी है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतमें केवल एक राज्य ऐसा है जहाँ सदियोंसे गोवध पूर्णरूपसे प्रतिबन्धित है और वह है जम्मू-कश्मीर-राज्य। इसीलिये कभी भी इस राज्यमें गोवधकी बात नहीं सुनी जाती है। गाय किसकी है?—इस सवालने गायका सबसे अधिक नुकसान किया है। आज परिस्थितियाँ ऐसी बन गयी हैं कि गाय किसीकी नहीं है। मुसलमान गोहत्याके आरोपसे बचनेके लिये इससे दूर रहते हैं और हिन्दूने केवल इसकी पूजा की है। आधुनिकताकी होड़ने गायको अकेला छोड़ दिया है। इसको मारनेवाला न हिन्दू है न मुसलमान, बल्कि आजकी जीवन-पद्धति है। इसलिये पुनः गोसेवा-केन्द्रित जीवन-पद्धतिको हमारे समाजमें वापस लाना होगा। इससे न केवल बचपनसे ही परिवारोंमें जीवमात्रके प्रतिनिधिके रूपमें गायके प्रति संवेदना जागेगी, अपितु महिलाओं और बच्चोंको पर्याप्त पोषण भी मिलेगा। इस प्रकार घरोंमें पलनेवाली गायें जब दूध देना बंद कर देंगी, तब उनकी देख-भाल ग्रामकी गौशालाओंमें हुआ करेगी। इसलिये गो-संवर्धनकी दृष्टिसे गौशालाओंकी स्थापनाके कार्यको एक आन्दोलनके रूपमें चलानेकी आवश्यकता है। ये गौशालाएँ ग्रामोद्योगके केन्द्र बनेंगी और देहातमें गोचर-व्यवस्थाको फिरसे कायम करनेमें सक्रिय योगदान करेंगी। फिर तभी सम्भव होगी गोचर-केन्द्रित कृषि-व्यवस्थाकी पुनःस्थापना, जो भारतकी टिकाऊ खेती-बारीका मेरुदण्ड था। तभी सम्भव होगा गोसेवासे ग्रामोत्थान और तभी घटित होगी देशभरमें 'ग्रामोत्थानसे समानता और सद्भावनाकी सम्पूर्ण क्रान्ति।'

[प्रेषक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी मोदी]

शाकाहार—मधुमेहकी सर्वोत्तम औषधि

(श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा)

प्राय: अनुचित, अशुद्ध, असंतुलित आहारके कारण ही मनुष्य मधुमेह-जैसे भयंकर रोगसे ग्रस्त हो जाता है और इसलिये इसका उपचार भी उचित, शुद्ध एवं संतुलित आहार ही है।

विदेशोंमें हुए परीक्षणों तथा शोधोंसे परीक्षकों और शोधकोंने निष्कर्ष-रूपसे इस सत्यको स्वीकार किया है कि मांसाहार एवं पशु-अवयवोंका भक्षण मधुमेहका मुख्य कारण है।

डॉ०एल०एच० न्युवर्ग तथा डॉ०ओ०एस०परेटने मधुमेहके कारणोंपर कई वर्षोंतक अस्पतालों एवं परीक्षणालयोंमें शोध करनेके बाद कहा कि मांसाहारके कारण मांसाहार-भक्षीके मूत्रमें अत्यधिक अवाञ्छित गाद (स्लेग) एकत्र हो जाती है, जिसकी मात्रा ७० ग्राम प्रतिदिनतक देखी गयी है, जबकि शाकाहारभोजीके मूत्रमें मात्र २०-२५ ग्राम। इस अवाञ्छित गादका किडनीपर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण मधुमेह तथा उससे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके साथ किडनी तथा हृदय अस्वस्थ हो जाते हैं।

आज यदि शाकाहारियोंको मधुमेह और मधुमेहके कारण रक्तचाप, हृदय, किडनी, मस्तिष्ककी नशोंमें रक्तका जमना आदि कई रोग होते हैं तो इनके मुख्य कारण हैं—शाकाहारीके शरीरमें मांसाहारीका रक्ताधान। इसके साथ ही ऐसे कई टूथपेस्टोंका व्यवहार जिनमें पशुओंकी हड्डीके चूरेका उपयोग होता है। ऐसी जाम, जेली, आइसक्रीम, चॉकलेट, मसाले, कास्मेटिक्सका प्रयोग, जिनमें पशुओंके अवयव मिले रहते हैं। ऐसी दवाइयोंके कैप्स्यूल आदिका उपयोग जो प्राय: जेलेटीन्से बनते हैं और जेलेटीन् पशुओंके बेकार अवयवोंसे बनती है। इस जेलेटीन्का उपयोग गोंदकी जगह भी किया जाता है। इस प्रकार अन्यान्य रूपोंमें हम लोग किसी-न-किसी प्रकार अनपेक्षित ही मांसाहार करते रहते हैं, जो हमारे स्वास्थ्यके लिये बहुत ही घातक है।

कई शाकाहारी भी कहनेको तो असंतुलित कुछ नहीं खाते, पर मौका मिलते ही बादाम, पिस्ता एवं मेवा आदिके मिष्टान्न खाते नहीं थकते। यहाँतक कि उपवासमें भी अत्यधिक प्रोटीन एवं अत्यधिक वसावाले पदार्थ खाते हैं। उन्हें ज्यादा प्रोटीन एवं वसा (घी, तेल)-के कारण यह रोग हो जाता है।

कुछ वर्षों पहले चिकित्सा-वैज्ञानिकोंने कुत्ते, गाय, सूअर आदिकी 'पेनक्रिया' से इन्सुलिन बनाना शुरू किया और दावा किया कि अब मधुमेही मधुमेहसे छुटकारा पा सकेगा; पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। आज लाखों मधुमेही प्रतिदिन इन्सुलिनका इन्जेक्शन लेते हैं, इससे सम्भवत: मधुमेहपर अंकुश तो लगा रहता है, परंतु वास्तविक अंकुश लगता है शर्करा-पदार्थोंके न खानेसे ही; क्योंकि जब शर्करा ही कम खायेंगे तो शरीरमें शर्करा स्वत: कम होगी। इसलिये कई चिकित्सकोंका मत है कि इन्सुलिनका रोगीपर केवल मनोवैज्ञानिक असर होता है, परंतु चूँकि इन्सुलिन पशुओंकी 'पेनक्रिया' से बनती है, इसलिये इन पशुओंकी कई बीमारियाँ भी रोगीको लगनेकी सम्भावना रहती है। इन चिकित्सकोंके विचारमें इन्सुलिन-आधारित मधुमेहियोंको धीरे-धीरे इसकी मात्रा कम करते हुए इसे लेना बंद कर देना ही उचित है।

हिन्दूधर्ममें जनेऊका धार्मिक महत्त्व तो प्राय: सभी जानते हैं, परंतु इसका वैज्ञानिक आधार भी है। जनेऊके कारण जनेऊ-धारककी रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। या यों कहें कि जनेऊ अपने धारककी रोगोंसे रक्षा करता है। जर्मनीके चिकित्सा-विशेषज्ञोंने मुझे बताया कि यदि मूत्र-त्यागके २-३ मिनट पहले जनेऊ कानमें ठीकसे बाँध लिया जाय तो इसके कानोंकी नशोंपर होनेवाले प्रभावके कारण मूत्र-सम्बन्धित रोगों तथा किडनीके रोगोंसे जनेऊ-धारककी रक्षा होती है। उन्होंने तो यहाँतक कहा कि ब्रिटेन तथा फ्रांसमें किडनीके ऐसे रोगी जो डायलसिसपर निर्भर करते हैं, वे अपनी जेबमें जनेऊ रखते हैं एवं मूत्र-त्यागके पहले इसका उपयोग करते हैं और इससे उनको लाभ भी मिलता है।

जाने-माने आहार-विशेषज्ञ डॉ०जोय् शेल्बि रिलेके अनुसार चकातरा मधुमेहमें अति उपयुक्त फल है। इसे

खानेसे मधुमेह होनेकी सम्भावना कम रहती है और यदि मधुमेहका रोग हो तो तीन चकातरे दिनमें तीन बार खाने चाहिये और यदि मधुमेह शुरू ही हुआ है या होनेकी सम्भावना है तो दिनमें तीन चकातरे खाने चाहिये। उनके विचारमें यदि मधुमेही इन्सुलिन नहीं ले रहा है तो १५-२० दिनोंमें उसे काफी लाभ होगा और यदि इन्सुलिन ले रहा है तो अधिक समय लग सकता है।

मधुमेहमें आँवला—जिसमें विटामिन सी प्रचुर मात्रामें होता है, बड़ा लाभकारी है। एक बड़े चम्मच आँवलेके रसके साथ एक कप करेलेका रस यदि दिनमें दो बार लिया जाय तो वह स्वयं शरीरमें स्वाभाविक रूपसे डेढ़ दो महीनोंमें शरीरके लिये आवश्यक इन्सुलिनकी पूर्ति करने लग जाता है। हाँ, इस समय मधुमेहीके लिये यह विशेष आवश्यक हो जाता है कि वह उचित आहार ही ग्रहण करे।

ब्रिटेनके विशेषज्ञोंका मत है कि ४-५ करेलोंका रस सुबह खाली पेट लेनेसे तथा करेलेके बीजोंका पावडर भोजनमें उपयोग करनेसे मधुमेहीको अत्यधिक लाभ होता है, क्योंकि करेलेमें कुछ ऐसे विटामिन्स होते हैं, जो मधुमेहके कारण होनेवाले रोग जैसे—रक्तचाप, आँखोंके रोग, यौन रोग आदिसे उसकी रक्षा भी करते हैं।

भारतीय औषधि-अनुसंधान-केन्द्रके परामर्शानुसार चिकित्सककी रायसे लिये जा रहे आहारके साथ यदि पचीससे सौग्राम तक मेथीके बीजका प्रयोग किया जाय तो मधुमेहीको आश्चर्यजनक लाभ मिलनेकी प्रबल सम्भावना रहती है।

चना मधुमेहके रोगमें अति लाभदायक है, अनुसंधान-कर्ताओंके मतमें अधिक मात्रामें चना (ब्लेक ग्राम) तथा चनेका सत्तू, चनेसे बने पदार्थ खिलानेसे धीरे-धीरे मधुमेहका रोगी स्वस्थ होने लगता है।

कुछ चिकित्सकोंका मानना है कि मधुमेहीको दी जानेवाली अंग्रेजी दवाएँ (डायनिल, डायविनिज, डी०बी०आई०) भी कुछ समय बाद मधुमेहके प्रसारसे मधुमेहीकी रक्षा नहीं कर सकतीं। उनका कहना है कि 'गुँवारका गोंद' खाना मधुमेहीके लिये अति लाभप्रद है, वे तो यह भी कहते हैं कि जब गायोंको गुँवार खिलाया जाता था तो उस दूधमें गुँवारके असरके कारण दूध पीनेवालेको मधुमेह नहीं होता था। आज भी यदि भारतीय नस्लकी गायको गुँवार खिलाकर उसका दूध पिया जाय तो मधुमेही स्वस्थ हो सकता है।

जापान और जर्मनीमें तो गुँवारके गोंदको शुद्ध कर उसकी कैप्स्युलें मधुमेहियोंको उनके उपचार-हेतु दी जाती हैं और इन कैप्स्युलोंका औषधिके रूपमें निर्यात भी होता है। वहाँ काली गायको गुँवार, करेला, काला जामुन, चना, बेलपत्र, आमपत्र, नीमपत्र, चकातरा आदि खिलाकर उस दूधको 'मधुमेह-दूध' (डायबिटिक मिल्क)-के नामसे मधुमेहियोंके उपचारके लिये भी उपयोगमें लाया जाता है।

एक्यूप्रेसर चिकित्सकोंकी रायमें प्रतिदिन १०-१५ मिनट सुबह घूमना तथा दिनमें ५-७ बार हथेलीको तंबाकू बनानेकी क्रियाकी तरह रगड़ना भी मधुमेहीको स्वस्थ करनेमें सहायक होता है।

अन्तमें विविध शाकाहारी औषधियोंसे मधुमेहपर समुचित नियन्त्रणके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है—

इन्सुलिन और औषधियाँ करती नहीं उपचार मधुमेहका।
शुद्ध, संतुलित शाकाहार ही नाश करता मधुमेहका॥

उपर्युक्त प्राकृतिक (शाकाहारी) उपचारों, प्रयोगों, उपयोगों एवं वैज्ञानिक अनुसंधानोंके आधारपर हम निर्विवाद-रूपसे यह कह सकते हैं कि 'शाकाहार ही मधुमेहका सर्वोत्तम समाधान है।'

संतति-निरोधकी भावनासे मनुष्य इतना क्रूर, निर्दय, हिंसक हो जाता है कि गर्भमें स्थित अपनी संतानकी भी हत्या (भ्रूणहत्या या गर्भपात) करनेमें हिचकता नहीं, जो कि ब्रह्महत्यासे भी दुगुना पाप है।

अमृत-बिन्दु

अपने लिये कर्म करनेसे अकर्तव्यकी उत्पत्ति होती है।

× × ×

कालरूप अग्निमें सब कुछ निरन्तर जल रहा है, फिर किसका भरोसा करें? किसकी इच्छा करें?

× × ×

सत् असत्का विरोधी नहीं है, प्रत्युत उसको सत्ता देनेवाला है। सत्की जिज्ञासा ही असत्की विरोधी है।

× × ×

भगवान्के साथ दृढ़ अपनापन सम्पूर्ण दोषोंको खा जाता है।

× × ×

धनीलोग तो दूसरेको नौकर बनाते हैं, पर संतलोग दूसरेको भी संत ही बनाते हैं।

× × ×

निष्कामभावसे बुद्धि स्थिर होती है और अभ्याससे मन स्थिर होता है। कल्याण बुद्धिकी स्थिरतासे होता है, मनकी स्थिरतासे नहीं। मनकी स्थिरतासे सिद्धियाँ होती हैं।

× × ×

जो सदाके लिये और सबके लिये है, उसकी प्राप्ति 'योग' है। जो सदाके लिये और सबके लिये नहीं है, उसकी प्राप्ति 'भोग' है।

× × ×

सत्के बिना असत्को देख नहीं सकते और असत्के बिना सत्का वर्णन नहीं कर सकते।

× × ×

वास्तविक त्याग वह है, जिसमें त्याग-वृत्तिका भी त्याग हो जाय।

× × ×

धर्मका मूल है—स्वार्थका त्याग और दूसरेका हित।

× × ×

धर्मके अनुसार खुद चले—इसके समान धर्मका प्रचार कोई नहीं है।

× × ×

किसीका भी कल्याण होता है तो उसके मूलमें किसी संतकी अथवा भगवान्की कृपा होती है।

× × ×

'आशीर्वाद दीजिये'—ऐसा न कहकर आशीर्वाद पानेका पात्र बनना चाहिये।

× × ×

अपने कर्तव्य (धर्म)-का ठीक पालन करनेसे वैराग्य हो जाता है—*'धर्म तें बिरति'* (मानस ३। १६। १)। यदि वैराग्य न हो तो समझना चाहिये कि हमने अपने कर्तव्यका ठीक पालन नहीं किया।

× × ×

संसार कभी किसीको दुःख नहीं देता, प्रत्युत उससे माना हुआ सम्बन्ध ही दुःख देता है।

× × ×

कामनापूर्वक किया गया सब कार्य असत् है, उसका फल नाशवान् होगा।

× × ×

परमात्मतत्त्वका वर्णन नहीं होता, प्रत्युत अनुभव होता है।

× × ×

कुछ भी चाहना गुलामी है और कुछ नहीं चाहना आजादी है।

× × ×

मुक्ति स्वयंकी होती है, शरीरकी नहीं। अतः मुक्त होनेपर शरीर संसारसे अलग नहीं होता, प्रत्युत स्वयं शरीर-संसारसे अलग होता है।

× × ×

जिसमें राग हो जाता है, उसमें दोष नहीं दीखते और जिसमें द्वेष हो जाता है, उसमें गुण नहीं दीखते। राग-द्वेषसे रहित होनेपर ही वस्तु अपने वास्तविक रूपसे दीखती है।

× × ×

साधकको सत्य-तत्त्वका अनुयायी होना चाहिये, किसी व्यक्ति, सम्प्रदाय आदिका अनुयायी नहीं।

—श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज

साधनोपयोगी पत्र

(१)

दैन्यका सच्चा अर्थ

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपके प्रश्नोंका उत्तर निम्नलिखित है—

दैन्यसे अभिप्राय है—'अभिमानका नाश'। अभिमानी मनुष्यसे दूसरोंका अपमान हुए बिना नहीं रहता। किसी-न-किसी वस्तुको, परिस्थितिको, भावको लेकर वह अपनेको ऊँचा और दूसरेको नीचा समझता है। पर यह अभिमान उसको साधनपथसे गिरा देता है। इसीलिये श्रीचैतन्यदेवने कहा था—'**तृणादपि सुनीचेन**' अर्थात् जो अपनेको एक राहमें पड़े तिनकेसे भी नीचा माने, उसको किस बातका अभिमान होगा? यह दैन्य सहज—स्वाभाविक होना चाहिये। दैन्यका भी एक अभिमान हो जाया करता है। 'मेरे जीवनमें कितना दैन्य है और दूसरे लोग कितने अभिमानी हैं, अतः मैं उनसे अच्छा हूँ—सद्गुणी हूँ'—ऐसा बड़प्पनका भाव मनमें आ जाता है। इससे सावधान रहना चाहिये। मनुष्य भगवान्से प्रार्थना करते समय अपना दैन्य प्रकट करता है; पर वस्तुतः उसमें दैन्यका पता तभी लगता है, जब दूसरा कोई उसके किसी गुणपर आघात करे और वहाँ सहज दैन्यके कारण उसे क्षोभ तो हो ही नहीं, वरं यह ध्यानमें आये कि यह सच कह रहा है और उसके प्रति सद्भाव हो। ऐसा दैन्य भगवान्को बड़ा प्रिय होता है और भगवत्कृपा-प्राप्ति या साक्षात् भगवत्प्राप्तिका यह एक अमोघ परम सरल साधन है कि अपनेमें सच्चे अर्थमें असमर्थताका बोध होकर दैन्य आ जाय और दीनबन्धु भगवान्की सहज सुहृदता और सर्वशक्तिमत्तामें अखण्ड विश्वास हो जाय। यह होते ही तत्काल भगवत्कृपा प्रकट होकर फलित हो जाती है,उसके सारे पाप कट जाते हैं, वह प्रभुका निजजन बन जाता है और उसे भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। जैसे बिजलीके 'ऋणात्मक' या 'अभावात्मक' (Negative) और 'धनात्मक' या 'भावात्मक' (Positive) दो तारोंके मिलते ही विद्युत् उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही 'दीनता' और 'सर्वशक्तिमत्ता' अर्थात् 'अभाव' और 'पूर्णत्व' के यथार्थतया मिलते ही परिपूर्णतम परम साध्य भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। अतएव अपनेको सच्चे अर्थमें 'दीन' बना ले और भगवान्के अनन्त शक्तिमय सौहार्दमें अखण्ड अनन्य विश्वास कर ले।

दूसरे प्रश्नके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि ......सज्जनकी स्थिति वही जानते हैं और जानते हैं सर्वज्ञ भगवान्। मुझको कुछ भी पता नहीं। हाँ, मुझसे वे अवश्य ही अत्यन्त उच्च हैं, उनके साथ मेरी तुलना करना ही भूल है। वे यदि अमूल्य रत्न हैं तो मैं काँचका एक नगण्य तीखा टुकड़ा हूँ। अपनी बात मैं क्या बताऊँ? दूसरे क्या कहते हैं, क्या मानते हैं—यह उनकी अपनी दृष्टि है। और उनको मैं समझाने जाऊँ तो वे समझेंगे भी नहीं। पर मेरी अपनी दृष्टिसे मैं सभी साधारण मनुष्योंकी भाँति दुर्बलताओंसे भरा एक मनुष्य हूँ। मुझमें कोई भी विशेषता नहीं है। एक विशेषता है और उसे मैं मुक्तकण्ठसे निस्संकोच स्वीकार करता हूँ कि अकारण कृपालु, स्वभावसे ही सुहृद् सर्वशक्तिमान् भगवान्की मुझपर अनन्त कृपा है, (जो सभीपर है) और उस कृपासे ही मुझे पद-पदपर उसका अनुभव होता है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

प्रार्थनासे रोगमुक्ति

प्रिय बहिन! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। दैवी अनुष्ठान करानेकी शक्ति नहीं है तो कोई बात नहीं, आप स्वयं अपने मनसे अपनी ही करुण भाषामें सर्वशक्तिमान् सहजसुहृद् भगवान्से प्रार्थना कीजिये। इस साधनके सिवा मेरी जानकारीमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे मैं आपको बता सकूँ। विश्वासपूर्वक की हुई प्रार्थनासे मानसिक तथा शारीरिक सभी प्रकारके रोगोंका नाश हो सकता है। 'साइंस ऑव थॉट रिव्यू' नामक एक इंग्लैंडके पत्रमें श्रीगिल्वर्ट हेनरी गेज नामक सज्जन लिखते हैं—'जर्मनीके एक आदमीको 'शैशविक पक्षाघात' (पोलियो)-का रोग जन्मके पहले ही वर्ष हो गया था। फलतः उनके दोनों पैर बेकार हो गये। उसके लिये प्रार्थना की गयी। चार महीनेके बाद समाचार मिला कि उनके पैरमें नवीन शक्ति आ गयी है। ४८ सालसे जो मांसपेशियाँ मरी हुई थीं, वे सक्रिय हो गयी हैं,उनका जीवन सब चिन्ताओंसे मुक्त, भगवत्-विश्वासपूर्ण और

प्रफुल्लित हो गया है।'

प्रार्थनामें होना चाहिये विश्वास। आप करके देखिये। इसमें कोई हानि तो है ही नहीं। शेष भगवत्कृपा।

(३)

पापका प्रायश्चित्त—पश्चात्ताप

प्रिय बहिन, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी मानस व्यथाका कारण तो बहुत ठीक है, परंतु अब उसके लिये चिन्ता-विषाद करनेसे कोई लाभ नहीं। बचपनमें गलती हो गयी, उसके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त तो पश्चात्ताप ही है और वह आपको है ही। अब आपका जीवन परम पवित्र है, कहीं कोई दोष आपमें है नहीं। यही प्रायश्चित्त है। इसपर भी यदि आप और कुछ करना चाहें तो पापनाश तथा प्रभुकृपाके विश्वासके साथ '*हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥*'—इस मन्त्रकी सौ माला (प्रत्येक माला १०८ दानोंकी) धीरे-धीरे जप कर लें। इससे आपके पापका नाश हो जायगा।

घरमें या बाहर किसीसे भी, पतिदेवसे भी इस बातकी कभी भूलकर भी चर्चा मत कीजिये। यह उनको धोखा देना नहीं है—उनको दुश्चिन्ता, दुःख और नये भयानक कलहसे बचाना है। मेरे पास एक उदाहरण है—एक बड़े सीधे हृदयकी बहिनने सरलतासे अपने बचपनकी कोई भूल स्वामीको बता दी। वह स्वयं निर्दोष भी थी। परंतु उसकी बात सुनते ही पतिको इतना क्षोभ हुआ कि उसने अपनी संतानवती पत्नीको सदाके लिये घरसे निकाल दिया। वह नितान्त दुखी हो गयी। उसका दस वर्षका सुखी विवाहित जीवन मटियामेट हो गया। पतिको बहुत समझाया भी गया, पर उसका मन नहीं पलटा। अतएव आप अपनी इस बातको कहीं भी प्रकट करनेकी भूल मत कीजियेगा।

अब जीवनको परम पवित्र रखिये। सर्वथा पतिकी अनुगामिनी और सेवापरायण बनकर रहिये। भगवान्के पवित्र नामोंका जप कीजिये। विश्वासपूर्वक भगवत्प्रार्थना कीजिये। भगवत्कृपासे बड़े-से-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। भगवान्की शरण ग्रहण कीजिये—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

अतएव अशान्ति और चिन्ताको त्यागकर भगवत्कृपापर विश्वास कीजिये। शेष भगवत्कृपा।

(४)

किसका जीवन सफल है?

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। निम्नलिखित पंक्तियोंमें अपने सभी प्रश्नोंका उत्तर संक्षेपमें समझ लीजिये—

अग्नि ईंधनसे तृप्त नहीं होती, समुद्र जलसे तृप्त नहीं होता, काल प्राणियोंसे तृप्त नहीं होता और मनुष्य भोगोंसे तृप्त नहीं होता।

जिसके जीवनमें त्याग हो, जिसका धन गरीबोंकी सम्पत्ति हो, जिसका बल दीनोंका संबल हो, जिसका मन विश्वप्राणिरूप भगवान्की सेवामें लगा हो, वही धन्य है। उसीका जीवन सफल है।

उस धनसे क्या, जो अभावग्रस्तोंके काममें नहीं आता; उस बलसे क्या, जो निर्बलकी रक्षा नहीं करता; उस श्रवणसे क्या, जो आचरणमें नहीं आता और उस जीवनसे क्या, जो जितेन्द्रिय नहीं है।

जो दुःखोंके आनेपर घबराये नहीं और सुखोंकी इच्छा ही न करे—वही स्थितप्रज्ञ है। भक्त वह है, जो अनुकूल प्राणिपदार्थोंको प्राप्त करके हर्षित नहीं होता, प्रतिकूल प्राणिपदार्थोंसे द्वेष नहीं करता, अनुकूल प्राणिपदार्थोंके नष्ट हो जानेपर शोच नहीं करता और प्रतिकूलके नाशकी तथा अनुकूलको प्राप्त करनेकी आकांक्षा नहीं करता, जो समस्त शुभाशुभका परित्याग करके केवल भगवान्का हो जाता है।

ज्ञानी वह है, जो प्रिय-प्राप्तिमें हर्षित नहीं होता, अप्रियकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होता।

शेष भगवत्कृपा।

पशु-चर्म तथा सींगों आदिके मिश्रणसे निर्मित जेलेटीन् डालकर बनायी गयी आइसक्रीमसे सावधान

(सुश्री पद्मा अग्रवाल)

आजके समाजमें, बाजारमें निर्मित आइसक्रीमोंका उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। कितनी ही भयंकर सर्दी क्यों न हो, शादीका समारोह, सहभोज अथवा जन्मदिन-पार्टीको आइसक्रीमके बिना फीका समझा जाता है। बच्चोंसे लेकर बड़ोंतकको आइसक्रीम शौकसे खाते देखा गया है।

क्या आपने इन स्वादभरी आइसक्रीमोंके सम्बन्धमें कभी विचार किया है? इन सभी बाजारी आइसक्रीमोंमें जेलेटीन् डाला जाता है। कैमेस्ट्रीमें एम्०एस्०सी० मेरी एक सहेलीने जेलेटीन्के बारेमें मुझे बताया कि यह अशुद्ध वस्तु है। मैंने 'ऑक्सफोर्ड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरीमें देखा—जेलेटीन् (Gelatin)-का अर्थ (Glue) 'सरेस' दिया है। जबकि इसी डिक्शनरीके पेज नं० ४०५ में 'सरेस' (Glue)-का अर्थ दिया है—"A hard brittle thing made by boiling hides, horns etc. And yielding a sticky substance when boiled." नालन्दा अद्यतन कोषके ९४२ पेजपर 'सरेस' का अर्थ इस प्रकार बताया गया है—'यह एक प्रकारका लसदार पदार्थ है, जो चमड़ेको उबालकर बनाया जाता है और गोंदके समान होता है।'

हमें आइसक्रीम बनानेवालोंसे जानकारी मिली है कि आइसक्रीम तैयार करते समय कुछ चम्मच जेलेटीन् पानीमें कुछ देर भिगा देते हैं। जब वह फूलकर गाढ़ा और लसदार हो जाता है, तब उसे आइसक्रीम जमानेवाले पात्रमें मिला देते हैं। ज्यादातर आइसक्रीमोंको नरम बनानेके लिये इसी विधिका प्रयोग किया जाता है।

कितना ज्यादा अनर्थ हो रहा है। भारतकी जनता कुछ समय पूर्व मटकोंमें कुल्फी जमाया करती थी। हमारे हिन्दूधर्मके सभी देवी-देवताओंको कितना कष्ट है, हम धार्मिक बनकर, शाकाहारी बनकर उसी रसोईमें आरामसे आइसक्रीम बना और खिला रहे हैं, जो कि जेलेटीन् डालकर निर्मित की जाती है।

आइसक्रीमसे दाँत और आँत सभी खराब होते हैं। भारतकी धर्मपरायण जनताको धोखा हो रहा है। जिन लोगोंको यह जानकारी नहीं थी, वे यह जान लें कि बाजारमें बिकनेवाले आइसक्रीम अशुद्ध एवं अपवित्र वस्तुओंके योगसे निर्मित किये जाते हैं, जो धार्मिक, नैतिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्य तथा शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे भी हानिकर हैं। अत: आप आइसक्रीम न स्वयं खायें और न दूसरोंको ही खिलायें।

बाजारी आइसक्रीम खायें तो पहले पता कर लें कि जेलेटीन् तो नहीं डाला गया है? अन्यथा घरमें ही बिना जेलेटीन्वाली आइसक्रीम तैयार करें। छोटे-छोटे बच्चे आइसक्रीम शौकसे खाते हैं, उन बेचारोंको क्या पता कि हमें बचपनसे ही मांसाहारी बनाया जा रहा है। कितनी भयावह एवं दु:खद स्थिति है, जहाँ अमेरिका-जैसा पाश्चात्त्य-संस्कृति-सम्पन्न राष्ट्र शाकाहारकी ओर बढ़ रहा है, क्योंकि उसकी मान्यता हो गयी है—'शाकाहारी चीजें हमें स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त रखती हैं।' वहीं जीवमात्रके संरक्षण-संवर्धनकी संस्कृतिका पोषक, अहिंसाका समर्थक धर्म-संस्कृति-प्रधान देश भारतके नागरिकोंसे जाने-अनजाने प्राकृतिक भारतीय आहार-विधि—शाकाहार-पद्धतिकी अवहेलना हो रही है और उनमें मांसाहारकी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

अत: हम भारतीय नागरिकोंका यह पुनीत एवं आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि इस सम्बन्धमें जन-जनमें राष्ट्रिय संचेतनाका संचारकर अपने राष्ट्रका एवं राष्ट्रिय संस्कृतिका संरक्षण करें। इसीमें हमारा एवं हमारे राष्ट्रका कल्याण निहित है।

आइये, हम परस्पर शाकाहारी बननेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करें।
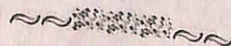
पढ़ो, समझो और करो

(१)

दाह-संस्कारमें त्रुटिका दुष्परिणाम

पता नहीं, मेरे इस धर्मप्राण भारतके ऋषि-मुनियोंकी संतान हिंदुओंको आज न जाने क्या हो गया है कि जो उन्हें अपना तो सब कुछ बुरा प्रतीत होने लगा है और दूसरे देशोंका सब कुछ अच्छा लगने लगा है। यहाँ भारतीयोंको शास्त्रानुसार मरना और मरनेपर दाहकर्म-संस्कार कराना भी अच्छा नहीं लगता। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्राचीन सनातनधर्मानुसार, शास्त्रानुसार दाहसंस्कारको एकदमसे समाप्त करनेके लिये विदेशी तकनीकी प्रबिधिपर आधारित अनेक महानगरोंमें विद्युत् शवदाह-गृहकी स्थापना की जा चुकी है और उन्हींमें मुर्दोंको बिना किसी क्रियाके ऐसे ही बिजलीसे फूँक दिया जाता है। दिल्ली, बंबई, कलकत्ता आदिमें तथा और भी कई जगह, यह कार्य प्रारम्भ भी हो चुका है।

दाह-संस्कारमें तनिक भी कमी रहनेसे मृतक आत्माको अगले जन्ममें कितना दुष्परिणाम भोगना पड़ता है, आजके पाश्चात्त्य सभ्यताके रंगमें रँगे लोग इसकी तनिक भी परवा नहीं करते हैं। सनातनधर्मानुसार दाह-संस्कार न करनेसे क्या-क्या भयंकर दुष्परिणाम भोगने होते हैं; शास्त्रोंमें आयी पुनर्जन्मकी बातें अक्षर-अक्षर सत्य कैसे हैं और आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी उपासनासे पुत्र-प्राप्ति और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति कैसे होती है—इस सम्बन्धकी एक बिलकुल सत्य घटना नीचे दी जा रही है—

मार्च सन् १९६० की बात है। हम मुजफ्फरनगर गये थे। एक दिन सहसा काली नदीके किनारे देव-मन्दिरोंके दर्शन करते हुए किसी संतके सत्सङ्गकी तलाशमें घूम रहे थे। अकस्मात् एक जगह एक तख्तपर विराजमान, गीताका पाठ करते हुए संत दृष्टिगोचर हुए। संतजीको सारी गीता कण्ठस्थ थी और उन्होंने उपनिषद् भी खूब देखे थे। आप योगाभ्यासी भी थे। शुभ नाम था—श्रीस्वामी मदनानन्द सरस्वती। प्रसङ्ग चलनेपर महाराजजीने कहना प्रारम्भ किया—

'मेरा जन्म जिला कानपुरके तहसील देरापुरमें संवत् १९४२में हुआ था। मैं जातिका दुबे ब्राह्मण था। हमारी माताजीके चार लड़कियाँ हुईं; पर उनके लड़का कोई नहीं हुआ। वह लड़का न होनेके कारण दिन-रात चिन्तित रहा करती थीं। किसी संतके बतानेके अनुसार उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी शरण ली। हमारे गाँवके बाहर एक भगवान् श्रीशंकरजीका मन्दिर था। हमारी माताजीने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त उन्हींकी पूजा-आराधना करना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शंकर बड़े ही दयालु हैं। उन्होंने हमारी माताजीकी प्रार्थना सुनी। पर जहाँ शास्त्रानुसार पूजन करनेसे भगवान् श्रीशंकर प्रसन्न हुए, जहाँ उनकी कृपासे पुत्र-प्राप्तिका शुभ अवसर हाथमें आया, वहाँ अकस्मात् एक कार्य शास्त्रविरुद्ध होनेके कारण एक घोर अनर्थ भी हो गया।

बात यह हुई कि इसी दरम्यान अकस्मात् हमारे पूज्य बाबा श्रीपरमसुख दुबेजीका स्वर्गवास हो गया। आपकी आयु उस समय लगभग ९० वर्षकी थी। शरीर पूरा होनेपर उन्हें मृतक-घाट अर्थात् श्मशान-भूमिमें ले जाया गया। हमारे यहाँ शास्त्रानुसार प्रथा है कि सूर्यास्त होते समय मुर्दा नहीं फूँका जाता। सूर्यास्तके समय मुर्दा फूँकना पाप माना जाता है। इसलिये सब कोई सूर्यास्त होनेसे पहले ही मुर्दा फूँक देते हैं। हमारे घरवालोंने अज्ञानतावश यह शास्त्रविरुद्ध कर्म कर डाला। 'सूर्यास्त हो रहा है, इस समय नहीं फूँकना चाहिये' इस बातकी तनिक भी परवा न कर सूर्यास्तके समय ही दाह-संस्कार कर डाला।

इस शास्त्रविरुद्ध दाहकर्म-संस्कारका घोर दुष्परिणाम यह हुआ कि अब उन्हीं बाबाको मुझ पोतेके रूपमें आकर आजतक उस पापका फल भोगना पड़ रहा है। अर्थात् मेरी एक आँखसे मुझे हाथ धो बैठना पड़ा।

बात यह हुई कि एक दिन रात्रिमें हमारी माताजीको बाबाजीने स्वप्न-दर्शन देकर कहा—'तुम लोगोंने हमारा दाहकर्म सूर्यास्तके समय कर दिया, इसलिये हमारा क्रियाकर्म भ्रष्ट हो गया। शंकर-पूजनसे तुम्हारे पुत्र होगा। हम ही तुम्हारी कोखसे पुत्र बनकर जन्म लेंगे; किंतु सूर्यास्तके समय हमारा दाहकर्म करनेके कारण हमारा एक नेत्र जाता रहा। अब हम ही तुम्हारे एक नेत्रवाले पुत्र होंगे।'

माताजीने यह स्वप्न देखा और उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

उन्होंने बाबाकी यह भविष्यवाणी सबको सुनायी। स्वप्नके कुछ दिनों पश्चात् ही मेरी माताजीके गर्भ रहा। स्वप्नकी भविष्यवाणीके अनुसार मैं एक आँखवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

माताजीको मेरी एक आँख न होनेका बड़ा कष्ट रहा। जब मैं कुछ बड़ा हुआ और बोलने लगा तो मैं सबके सामने बाबा होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण देने लगा। मैं सबको यह बताने लगा कि 'यह मेरी लाठी है, जिसे मैं पूर्वजन्ममें बूढ़ा होनेके कारण लेकर चला करता था। यह मेरा अँगरखा है, जिसे मैं पहना करता था। अमुक-अमुक हमारे रिश्तेदार हैं।' ये सब बातें बतानेपर भी हमारी माताजीने हमारी बातोंपर कोई ध्यान नहीं दिया। आगे चलकर हम बड़ी-बड़ी विचित्र बातें बताने लगे। पूर्वजन्ममें जब हम बाबा थे, उस समयके गाड़े हुए रुपये बताकर सबके सामने निकाल कर दिखाये। यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये।

(२)

'पूर्वजन्मका ज्ञान'

पिलखुवा, हमारे स्थानपर सुप्रतिष्ठित विद्वान् शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीबिहारीलालजी 'शास्त्री' काव्यतीर्थ पधारे थे। उन्होंने अपने मुखसे प्रसंगवश पूर्वजन्मके सम्बन्धकी श्रीरामनाम जपने, श्रीगङ्गास्नान करने और दानपुण्य करनेकी अद्भुत महिमाकी एक अपनी घटना सुनायी थी। वह सत्य घटना संक्षेपमें इस प्रकार है—

जिला बदायूँमें एक जगह है उझानी। एक बार उझानीके पासके ही किसी गाँवके रहनेवाले कुछ राजपूत लोग आये थे। वे लोग निजी वाहनसे अपने गाँवसे श्रीभगवती भागीरथीका स्नान करनेकी दृष्टिसे सपरिवार जा रहे थे। अपने गाँवसे चलकर जब वे लोग उझानी आये, तब चौराहेपर विश्राम करनेकी दृष्टिसे वे लोग कुछ देरके लिये रुक गये। बिलकुल सड़कके पास ही उन दिनों कुछ कंजर लोग रहा करते थे। उन कंजरोंकी वहाँपर झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। इन ठाकुर लोगोंके साथमें इनका एक छोटा बालक था, जिसकी आयु लगभग ५ वर्षकी थी। वह बालक अपने घरवालोंके पाससे चलकर उन सामनेवाले कंजरोंके पास उनकी झोंपड़ियोंमें पहुँच गया। उसने वहाँपर जाकर एक कंजरीका नाम लेकर पुकारा। कंजरकी उस स्त्रीको उस बालकके इस प्रकार बिना जाने-पहचाने अपना नाम लेकर पुकारनेपर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उस बालकसे पूछा—'अरे, तू किसको पुकारता है? तू कौन है?' इसपर उस लड़केने कहा—'क्या तू मुझे नहीं जानती? क्या तू मुझे भूल गयी?' कंजरीने कहा—'मैं तो तुझे जानती ही नहीं कि तू कौन है और कहाँका रहनेवाला है?' फिर भूलनेकी बात ही क्या है?

ठाकुरके लड़केने कहा—'मैं तेरा पति हूँ। तू मेरी स्त्री है।' उस कंजरीको एक छोटेसे बच्चेके मुखसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—'क्या यह छोटा-सा ४-५ वर्षका बच्चा है और कहाँ मैं इतनी बड़ी आयुकी स्त्री; फिर कैसे यह मुझे अपनी स्त्री बताता है?'

कंजरीने कहा—'अरे, तू मेरा पति कैसे बन गया? मैं तो तुझे जानती भी नहीं हूँ कि तू कौन है। मेरा पति तो कभीका मर गया है। अब मेरा पति कहाँसे आ गया? तू यह क्या कहता है?'

उत्तरमें उस लड़केने कहा—'तुझे पता नहीं कि तेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था?'

उसने कहा—'हाँ, मेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था, पर तू कोई मोहनसिंह कंजर थोड़े ही है। वह तो मर गया?'

उस लड़केने पुनः कहा—'मैं ही तेरा पति मोहनसिंह कंजर हूँ।' इतना कहनेके साथ ही वह बालक अपने पूर्वजन्मकी कहानी बताते हुए कहने लगा—'मैं पहले जन्ममें तेरा पति मोहनसिंह कंजर था और अब मैंने इन ठाकुरोंके घरमें आकर जन्म ले लिया है।' फिर उसने वहाँपर बैठे हुए सब कंजरोंको भी पहचान लिया। उसने उस समयकी और सब बातें भी बतानी प्रारम्भ कर दीं और बहुत-सी गुप्त बातें भी, जो उससे पूछी गयीं, उसने उन्हें बतायीं। उसकी बतायी हुई सभी बातें सत्य थीं, उन्हें सुनकर सभी कंजरोंने और कंजरियोंने स्वीकार किया। इसलिये उन्होंने झटसे उस बालकको अपनी गोदमें उठा लिया।

इधर जब उन ठाकुरोंने देखा कि हमारा बच्चा यहाँपर खेल रहा था और अब देखते-देखते वह किधर चला गया। अब वे बच्चेकी तलाश करने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब उनकी दृष्टि सामने कंजरोंकी झोंपड़ियोंकी ओर गयी तब उन्होंने देखा कि वह बच्चा कंजरोंके पास है। कंजर उसे

अपनी गोदमें उठाकर बड़े प्रेमसे खिला रहे हैं। ठाकुर लोग भागे हुए वहाँपर गये और जाकर उन कंजरोंसे अपने बालककी माँग की। कंजरोंने कहा—'नहीं, यह तो हमारा मोहनसिंह कंजर है। हम इसे अपने पास रखेंगे।'

ठाकुरोंने उन कंजरोंको बहुत कुछ समझाने-बुझानेका प्रयत्न किया कि किसी प्रकार यह हमारे बालकको हमें सौंप दें, पर वे लाख समझानेपर भी उसे देनेके लिये तैयार नहीं हुए। अब तो ठाकुरों और कंजरोंमें परस्पर बड़ी छीना-झपटी और कहा-सुनी हो गयी।

जब झगड़ा बहुत ज्यादा बढ़ गया और कोई निर्णय नहीं हो सका, तब ठाकुरोंने थानेमें जाकर पुलिसको इस बातकी सूचना दी कि 'हमारे बालकको कंजरोंने ले लिया है। उनसे हमारा बालक हमको दिलवाया जाय।' पुलिस घटनास्थलपर पहुँच गयी। उसने कंजरोंसे उस लड़केको ठाकुरोंको देनेके लिये कहा और उन्हें धमकाया भी, समझाया भी, फिर भी वे कंजर लड़केको देनेके लिये तैयार नहीं हुए।

जब किसी भी प्रकार विवाद नहीं सुलझा तब पुलिस उस बालकको कंजरोंसे अपने कब्जेमें लेकर उझानीके सुप्रतिष्ठित रईस रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीके सामने ले गयी। ठाकुर लोग और वह कंजर भी वहाँपर पहुँच गये। वह ठाकुरोंका ५ वर्षका बालक श्रीभदावरजीके सामने पहुँचते ही उन्हें पहचान लिया। उसने उनका शुभ नाम लेकर कहा कि 'भदावरजी! राम राम।'

रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीको उस छोटेसे बालकके मुखसे यह शब्द सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने चकित होकर उस बालकसे पूछा—'भाई तू कौन है? इसके पहले तो हमसे आजतक तू कभी मिला नहीं है; फिर तू हमें कैसे जानता है? तूने हमें कहाँ देखा है?' इसपर उस बालकने कहा—'रायबहादुर साहब! मैं पूर्वजन्मका आपका कंजर हूँ। मेरा नाम मोहनसिंह है और मैं जब कंजर था तब उस समय आपके घरपर आकर आपकी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था।'

माननीय रायबहादुर साहबने जब ये बातें सुनीं तो वे दंग रह गये। उस बालककी बतायी सभी बातें अक्षरशः सत्य थीं। उन्होंने उस बालककी बातोंकी पुष्टि करते हुए कहा कि मोहनसिंह कंजर हमारी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था। इसके बाद रायबहादुर साहबने उन कंजरोंको समझा-बुझाकर, उस बालकको उन ठाकुरोंको दिलवा दिया।

अब माननीय रायबहादुरजीने मुझे बताया कि 'इस बालकका कंजरसे धनाढ्य ठाकुरोंके घरमें जन्म लेनेका कारण यह है कि जब यह पूर्वजन्ममें मोहनसिंह कंजर था तब उस समय यह इतना संयमी और सात्त्विक था कि कभी भी मांस नहीं खाता था। किसी भी जीवको न तो कभी मारता था और न उनका शिकार ही करता था। इसकी श्रीगङ्गाजीमें इतनी श्रद्धा-भक्ति थी कि कंजर होते हुए भी यह श्रीगङ्गा-स्नान करनेके लिये जाया करता था और नित्य श्रीरामनामका जाप किया करता था। इसने गरीब होकर भी अपनी खून-पसीनेकी गाढ़ी कमाईका पैसा-पैसा जोड़कर ४०० रुपये इकट्ठे किये थे और ये रुपये मुझे देकर मेरे द्वारा एक कुआँ भी बनवाया था। जिससे सब लोग उस कुएँका पानी पीकर अपनी प्यास बुझा सकें। इसी श्रीरामनामके जप करनेसे, गङ्गाके स्नान करनेसे, कुआँ बनवाने और जीवोंपर दया करने आदि पुण्योंके प्रतापसे इसे ऐसा जन्म प्राप्त हुआ है।'

[प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी]

(३)

देवीकी दया

आजादी मिलनेपर क्वेटामें साम्प्रदायिक दंगे चल रहे थे। वहाँपर एक मुसलमान होटल-मालिकके यहाँ एक वफ़ादार हिंदू नौकर था। उसका नाम था चोइथराम।

एक दिन कुछ दंगाइयोंने होटल-मालिक और उसकी बीबीको कुरान और सूअरकी शपथ दिलायी और चोइथरामका क़त्ल करनेको कहा।

रातको होटल-मालिकने सोते हुए चोइथरामका काम-तमाम करनेका विचार किया। तब उसकी बीबीने उसे बहुत समझाकर कहा कि 'ऐसी बेसिर-पैरकी शपथ वास्तवमें शपथ नहीं कही जा सकती। हर एक मनुष्यका वास्तविक धर्म तो स्वामिभक्त नौकरकी रक्षा करनेका है, विश्वासघात करके उसको यमलोक भेजनेका काम तो जघन्य पाप है। कुरान आदिका शपथ तो प्राणिमात्रके कल्याणके लिये—जीवन

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के अबतक प्रकाशित लोकप्रिय विशेषाङ्क

[गताङ्क-संख्या ७ से आगे]

कल्याण-वर्ष ११, वेदान्ताङ्क (सन् १९३७ ई०) इसमें भारतीय संस्कृतिके महत्तम धर्म-दर्शन-'वेदान्त'-की बृहत् व्याख्यासहित वेदान्त-आधारित ज्ञान (चिन्तन)-को परमात्मप्राप्तिका प्रमुख साधन और आत्मकल्याणको मनुष्य-जीवनका परम प्राप्तव्य बताया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञानियों एवं वेदान्त-मार्गीय साधकोंके जीवन-दर्शन, सिद्धान्त तथा चरित्रोंपर ज्ञानवर्धक रोचक सामग्री प्रस्तुत की गयी है।

कल्याण-वर्ष १२, संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९३८ ई०) [कोड-नं० 627] महामहिम संतोंकी महिमासे मण्डित, उनकी शिक्षाओं, उपदेशों और पवित्र प्रेरणाओंसे पूरित यह 'संत-अङ्क' नित्य पठनीय और सर्वदा सेवनीय है। इसमें प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी संतों तथा भगवद्विश्वासी महापुरुषोंसहित अनेकों त्यागी, विरागी महात्माओंके आदर्श चरित्रोंका ऐसा रोचक वर्णन है कि जिसे पढ़कर परमार्थकी ओर सहज प्रवृत्ति होती है। मूल्य रु० ९० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष १३, मानसाङ्क (सन् १९३९ ई०) तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका सम्पूर्ण, मूल चौपाइयोंके साथमें सरल, सुललित हिन्दी-अनुवाद इसमें दिया गया है। 'मानस'-सम्बन्धी कुछ खोजपूर्ण विशेष लेख एवं भावपूर्ण अनेक सुन्दर बहुरंगे चित्र इसकी उल्लेखनीय विशेषताओंके रूपमें चर्चित रहे हैं। (वर्तमानमें यह तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस सटीक (सचित्र, सजिल्द) बृहदाकार एवं ग्रन्थाकार संस्करणोंके रूपमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १४, गीतातत्त्वाङ्क (सन् १९४० ई०) 'मानसाङ्क' की तरह ही इसमें श्रीमद्भगवद्गीताके मूल श्लोकोंके साथ सरल-सुबोध भाषामें प्रश्नोत्तरोंके रूपमें गीताकी विस्तृत, बड़ी ही सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। गीताकी विशेषताओं एवं महत्त्वपर प्रकाश डालनेवाले कुछ तात्त्विक लेख भी इसमें दिये गये हैं। (वर्तमानमें यह **'श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्वविवेचनी'** टीकाके नामसे प्रसिद्ध है तथा सचित्र, सजिल्द ग्रन्थाकारमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १५, साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९४१ ई०) [कोड-नं० 604] यह विशेषाङ्क उच्च कोटिके विचारकों, वीतराग महात्माओं, एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचारोंका बृहत् संग्रह है। इस दृष्टिसे साधनाके विभिन्न स्वरूपों, प्रकारों और साधना-मार्गोंका बहुमूल्य दिग्दर्शन करानेवाली इसकी साधनापरक लेख-सामग्री अत्यन्त उपयोगी है। अतः आत्मकल्याणकामी पुरुषों और साधकोंको इसका मार्ग-दर्शन अवश्य प्राप्त करना चाहिये। मूल्य रु० ७५ (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध।)

कल्याण-वर्ष १६, भागवताङ्क (सन् १९४२ ई०) कलि-पाप-ताप-संतप्त भयावह भव-समुद्रसे संतरण करानेवाली, भगवत्कथामृत-पीयूषिणी—श्रीमद्भागवतकी रसमयी कथाओंका यह बृहत् संग्रह विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। सम्पूर्ण भागवतके सरस हिन्दी-भावानुवादके साथ इसमें श्रीमद्भागवतमहापुराणकी महिमापर प्रकाश डालनेवाले कुछ विशेष लेख, श्रीमद्भागवतमाहात्म्य, पूजन-अर्चन एवं पारायण-विधि आदिपर महत्त्वपूर्ण सामग्री दी गयी है। इससे इसकी उपयोगिता और लोकप्रियतामें और भी अधिक वृद्धि हुई है। (वर्तमानमें यह ग्रन्थाकार मूल संस्कृतके साथ, हिन्दी-अनुवाद-युक्त दो खण्डोंमें एवं केवल भाषानुवाद एक ही भागमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १७, संक्षिप्त महाभारताङ्क (सन् १९४३ ई०) महाभारतकी अत्यधिक महिमा और उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंका समावेश होनेके कारण शास्त्रोंमें इसे 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें 'भारतीय ज्ञानका विश्वकोश' कहा गया है। इस ग्रन्थका पूर्वार्ध संक्षिप्त तथा सरल हिन्दी (अनुवादसहित)-में विशेषाङ्कके रूपमें तथा उत्तरार्ध (ग्यारह मासिक) साधारण अङ्कोंमें क्रमशः प्रकाशित हुआ था। वर्तमानमें यह 'संक्षिप्त महाभारत' के नामसे सचित्र, सजिल्द दो खण्डों [कोड-नं० 39, ५12]-में उपलब्ध है।

कल्याण-वर्ष १८, संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणाङ्क (सन् १९४४ ई०) वेद जिस परम तत्त्वका निरूपण करते हैं वही श्रीमन्नारायणतत्त्व श्रीमद्रामायणमें श्रीराम-रूपमें वर्णित है। इसीलिये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी लोकमें वेद-तुल्य प्रतिष्ठा है। मूल ग्रन्थ संस्कृतमें है। हिन्दी-पाठकोंके सुविधार्थ 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित वाल्मीकीय रामायणका यह संक्षिप्त और सरल हिन्दी-रूपान्तर बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। अब यह ग्रन्थाकार केवल हिन्दीमें [कोड-नं० 77] एवं संस्कृत मूलके सहित हिन्दी-अनुवाद भी दो खण्डोंमें [कोड-नं० 75, 76] अलगसे (सजिल्द ग्रन्थाकारमें) भी उपलब्ध है। [क्रमशः]

व्यवस्थापक—**'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

रक्षाके लिये ग्रहण किया जाता है।' इतना समझानेपर भी मूढ़ होटल-मालिकके कानोंपर जूँतक नहीं रेंगी।

तब होटल-मालिककी बीबीने धर्म-संकट देख पतिसे नौकरके लिये चाय बनानेकी आज्ञा माँगी। उसने पतिसे कहा कि 'मैं चाहती हूँ कि नौकरको मरनेसे पहले चाय पिला दूँ, फिर आप नौकरको मृत्युके घाट पहुँचावें।' अब होटल-मालिक बिस्तरपर पड़ा आराम करने लगा।

मौका देखकर होटल-मालिककी बीबीने चोइथरामको जगाकर उसे क्वेटासे नौ-दो ग्यारह हो जानेको कहा। वह वहाँसे भाग कर जोधपुर चला गया।

जोधपुर आनेपर चोइथरामने उस देवीके प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए बताया, 'मेरा जीवित-शरीर उस देवीकी ही दया है।'

(४)

पहलेसे बचानेकी व्यवस्था

बात कुछ वर्ष पूर्वकी है, जब मेरे लघु भ्राता माध्यमिक विद्यालय बड़ोदियामें कक्षा ८ में अध्ययन करते थे। भगवान्‌की महान् कृपा-प्रेरणासे ये बचपनसे ही नियमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा-पूजा किया करते थे। बड़ोदियामें ये छोटे कमरेमें रहते थे, इनके साथ दो और साथी थे। वहाँ स्थित श्रीदाऊजीके मन्दिरका दर्शन करना, सत्संग करना एवं धार्मिक पर्वोपर सेवामें कुछ हाथ बँटाना इनका नित्य-नैमित्तिक कार्य हो गया था। एक बार रात्रिके समय जब ये सो रहे थे, तब अचानक ऊपर रखी हुई लकड़ियोंका ढेर खिसक गया और ऊपरसे सभी लकड़ियाँ गिर गयीं, पर इसके कुछ समय पूर्व ही ये सोते हुए ऐसे घबराकर उठे, मानो इनको किसीने हाथ पकड़कर अलग गिरा दिया हो। ये ज्यों ही वहाँसे अलग हटे, त्यों ही लकड़ियोंका ढेर नीचे गिर पड़ा। स्थान संकीर्ण होनेके कारण इन्होंने जलानेकी लकड़ियाँ कमरेमें ही ऊपर जमा कर दी थीं। उतनी आवाज होनेपर दो साथी जो दूर सो रहे थे, वे उठ आये। उन्होंने अत्यन्त घबराकर इनको आवाज दी, देखा तो बिलकुल आरामसे बाल-बाल बचे हुए बैठे हैं। सभीकी स्थिति अवाक्-सी हो गयी। यह प्रसंग मुझे सुनाते-सुनाते वे गद्गद हो गये। मैं भी बहुत प्रभावित हुआ कि भगवान् किस तरह रक्षा करते हैं। यदि इनकी निद्रा न खुली होती तो इनका बचना असम्भव ही था। परंतु वहाँ तो बचनेकी व्यवस्था पहलेसे थी। बचानेवालेने बचा ही लिया था।

[प्रेषक—पुरुषोत्तम पण्ड्या 'साहित्यरत्न']

मनन करने योग्य

'शाहजी! आपने ऐसा क्यों किया? अरे, इतना दान किया ही था चालीस-पचास रुपये और दे देते तो आपके नामकी तख्ती दानवीरोंमें लग जाती। लोगोंको मालूम होता कि आपने दानमें दस हजार रुपये दिये।'

श्रीजमशेदजी मेहता समाज-कल्याण और धर्मके कार्योंमें गहरी दिलचस्पी रखते थे। उन्होंने अपने सहयोगसे शिक्षण-संस्थाएँ, अस्पताल, पुस्तकालय, गोशालाएँ, प्याऊ, मन्दिर, धर्मशालाएँ आदि कितनी ही संस्थाएँ खोल रखी थीं। अनाथों, गरीबों और विद्यार्थियों आदिकी सहायता वह अनेक प्रकारसे किया करते थे।

एक बार कराँचीके सार्वजनिक चिकित्सालयकी सहायताके लिये धन इकट्ठा किया जा रहा था। यह एक धार्मिक और समाजोपयोगी कार्य था। हर कोई अपनी-अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार दान कर रहा था। धनकी अत्यन्त थोड़ी राशि भी दानमें स्वीकार की जा रही थी।

दान इकट्ठा करनेके लिये एक समिति बनी। समितिने यह निर्णय किया कि बड़े पूँजीपतियोंको आकर्षित करनेके लिये शिलापट्टपर उनके नाम अंकित किये जायँ, जिससे उन्हें समाजमें सम्मान मिल सके, उनके दानका विज्ञापन हो सके, लोग दान-दाताओंकी वाहवाही करें। इस यश, सम्मान और वाहवाहीसे आकर्षित होकर पूँजीपति अधिक-से-अधिक दान करेंगे।

समितिके निर्णयानुसार सार्वजनिक रूपसे इसकी घोषणा भी कर दी गयी कि—'जो सज्जन दस हजार रुपये

चिकित्सालयके दान-कोषमें देंगे, उनके शुभ नामकी संगमरमरकी पट्टिकाएँ चिकित्सालयकी दीवारपर लगा दी जायँगी।'

पूँजीपतियोंने नामकी प्रसिद्धि, अपनी फर्मके विज्ञापन और यशकी आकांक्षासे भरपूर दान किया। उनके नामोंकी पट्टिकाएँ भी लगीं।

मनुष्य सब कुछ छोड़ दे परंतु उसकी प्रशंसाकी भूख तथा अपनी तारीफ सुननेकी चाह और यशकी आकांक्षा नहीं छूटती! मानव-प्रकृतिकी सबसे बड़ी प्रेरणा महत्त्वपूर्ण कहलानेकी उसकी गुप्त लालसा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी तारीफ़ सुनना पसंद करता है। विलियम जेम्सने लिखा है कि 'आदमीके स्वभावमें सबसे गहरा भाव दूसरोंसे सम्मान पानेकी लिप्सा है'। प्रशंसा मनुष्यकी कभी पूरी न होनेवाली क्षुधा है। जो कुशल व्यक्ति दूसरोंकी इस भूखको ईमानदारीसे शान्त कर सकता है, वह लोगोंको अपनी मुट्ठीमें कर सकता है।

लेकिन श्रीजमशेदजी मेहता यशकी इच्छा और लिप्साके प्रति अत्यन्त सतर्क रहनेवाले व्यक्ति थे। यश और प्रसिद्धिसे दूर भागनेका उनका स्वभाव ही बन गया था। अत: अपने इसी स्वभावके अनुसार उन्होंने दस हजारसे कुछ कम ही रुपये दानके कोषमें दिये। फलत: उनके नामकी पट्टिका नहीं लगायी गयी।

इतना बड़ा दान और फिर भी नामकी संगमरमर-पट्टिका न लगवाना—अजीब व्यक्ति थे मेहताजी! क्या वे महत्ताकी आकांक्षा एकदम नहीं रखते थे?

उनकी यह प्रवृत्ति देखकर एक सज्जनने उनसे अपनी शंकाके निवारणार्थ प्रश्न किया—

'शाहजी, आपने ऐसा क्यों किया? अरे साहब! वहाँ दस हजार ही दे देते, कम क्यों दिये? चालीस-पचास रुपयेकी क्या बात थी? इतने और दे देते तो आपके शुभ नामकी पट्टिका चिकित्सालयमें लग जाती।'

वे कुछ देर चुप रहे। क्या बात थी उनके मनमें?

कहिये मेहताजी, आपकी अनुमति होती तो चालीस-पचास रुपये आपकी ओरसे हम ही दे देते। आपके शुभ नामकी पट्टिका तो लग जाती! क्या आप समाज-सेवाके कार्योंको प्रोत्साहित नहीं करना चाहते? क्या रहस्य है यह? क्या आपमें दानके माध्यमसे बड़ा कहलानेकी लालसा नहीं है?

उत्तरमें मेहताजीने धीरेसे कहना शुरू किया—

'मित्रो! समाज-सेवाके लिये दान करना अच्छी बात है। बिना धनके कोई भी बड़ा काम नहीं हो सकता। हर समाज-सेवीको धनकी आवश्यकता तो पड़ती ही है।'

'सो तो सब मानते हैं, लेकिन····।'

'लोक-सेवाके कार्योंमें नाम होनेकी होड़से ही तो सारी दान-प्रवृत्ति बदनाम हो रही है। हमें समाजकी जनहितकारी प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देना चाहिये।' मेहताजी बोले।

'आखिर नाम-पट्टिकामें क्या हर्ज है?'

मेहताजीने कहा—'जनहितकारी कार्योंमें त्याग-भावना होनी चाहिये, प्रशंसा या विज्ञापनकी थोथी प्रवृत्ति नहीं। नामोंकी पट्टिकाएँ लगवानेकी होड़ दान या जनहितकी भावना नहीं, आत्म-प्रशंसा और विज्ञापनकी व्यापारिक प्रवृत्ति है। महत्ता प्रदर्शित करनेकी ललक है, सेवाका भाव नहीं।'

'तो क्या सत्कार्योंके लिये लोगोंको प्रशंसित और पुरस्कृत करना अनुचित है?'

'नहीं, नहीं'—मेहताजीने स्पष्ट किया, अच्छे कार्योंकी तारीफ़ होनी चाहिये। यथोचित गुणग्राहिताका बड़ा मूल्य है। लोगोंको दूसरी किसी वस्तुकी उतनी आवश्यकता नहीं जितनी आत्मपूजाके पोषणकी। प्रशंसाके शब्द हर किसीकी स्मृतिमें वर्षोंतक प्रात:कालीन नक्षत्रोंके संगीतकी भाँति गूँजते रहते हैं।

लेकिन दानके क्षेत्रमें आत्मप्रशंसा आत्महत्या है। यह छिछली, स्वार्थमय और प्राय: कपटपूर्ण होती है। यह कटु सत्य है कि कुछ लोग गुणग्राहिता और प्रशंसाके इतने भूखे होते हैं, इतने इच्छुक होते हैं कि कोई भी वस्तु निगल जाते हैं।

आज हम सब ऐसी भूख जगा बैठे हैं कि सूईके दानका भी प्रचार हो, तनिक-सा पैसा दिया जाय पर उसका अधिक-से-अधिक विज्ञापन हो, लोग बड़े दान-दाताओंकी सूचीमें उन्हें देखें और उनकी अमीरी और परोपकारकी दाद दें।

यह स्वार्थकी, दिखावेकी दुष्प्रवृत्ति हटनी चाहिये। धर्म

तो गुप्त रखनेकी भावना है, प्रचार और विज्ञापनकी प्रवृत्ति नहीं।

मनुष्य विज्ञापन और प्रसिद्धिके लोभमें दान करता है। वह धनसे धर्मके क्षेत्रमें प्रसिद्ध होना चाहता है। धन तो आत्माकी तुष्टि, गुप्त सेवा और कल्याणके लिये खर्च होना चाहिये। यहाँ दिखावेका कोई स्थान नहीं है।

श्रीजमशेदजी मेहताके गुप्तदानका यह उदाहरण प्रत्येक उदार भक्तको आचरणमें उतारना चाहिये। इसी पवित्र आचरण-भावनाके संस्थापन-हेतु भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(गीता १८। ५)

अर्थात् यज्ञ-दान तथा तप—ये पवित्र धर्म-कर्म मनुष्यको कभी नहीं छोड़ने चाहिये। इन्हें करना सभीका नैतिक और आवश्यक सांस्कृतिक कर्तव्य है। ये कर्म बुद्धिमानोंको पवित्र करनेवाले हैं।

—डॉ०श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०

भगवान्की सहज कृपामें विश्वास करो

मनुष्य दुर्बल प्राणी है। जन्म-जन्मान्तरसे उसे विषय-सेवनका अभ्यास है, संग भी विषयी जगत्का है। काम, क्रोध, लोभ, मोहके वश सदा वह योनि-योनिमें रहता आया है। इसलिये मनमें विकारों तथा दोषोंका रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। परंतु भगवान्की कृपासे जब मनके दोष दीखने लगते हैं तथा उनके रहनेका दुःख होने लगता है, तब वे नष्ट होने लगते हैं—*'जाने ते छीजहिं कछु पापी।'* वास्तवमें संसारके प्राणि-पदार्थोंमें सुखकी कल्पना किसी-न-किसी अंशमें बनी ही रहती है, इसीसे अनुकूल विषयोंमें आसक्ति रहती है, उनके प्राप्त करनेकी कामना होती है तथा उनके न मिलने या नष्ट हो जानेपर दुःख होता है। और इसी कारण मनुष्यकी, जानते-समझते हुए भी, बुरे कर्ममें प्रवृत्ति होती है। कई बार भगवान्के नामपर भी नासमझीसे विषयासक्तिवश विषय-सेवन होता रहता है। पर भगवत्कृपापर विश्वास करके भगवान्के बलसे इस प्रवृत्तिको तथा इस प्रकारकी इच्छाओंको सर्वथा नष्ट कर देना चाहिये। इन्द्रिय-सुख-लालसा, मानकी इच्छा, शरीरके आरामकी कामना, अनुकूल प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिकी लालसा—ये सभी हमारी यथार्थ भगवत्-प्रीतिमें बाधक हैं; परंतु इनका त्याग सहज नहीं है। इसलिये इनके त्याग या नाशकी सच्ची इच्छा जाग्रत् करके अपनेको सर्वथा निर्बल मानकर सर्वसमर्थ प्रभुके शरण हो जाना चाहिये। प्रभु निर्बलके बल हैं, असहायके सहायक हैं। वे ऐसे करुणामय हैं कि शरण होनेवालेके पापोंसे घृणा तो करते ही नहीं—छोटे बच्चेका मल जैसे माँ अपने हाथसे धो देती है, उसी प्रकार स्वयं उसके पापोंको धोकर साफ कर देते हैं, पापके मूलतकका नाश कर देते हैं।

'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥'
'.....पापयोनयः .... तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥'

—उनकी घोषणा है। वे शुद्ध होनेपर अपनाते हों, ऐसी बात नहीं है। कोई कैसी भी—बुरी-से-बुरी हालतमें हो, वह यदि भगवान्की शरणमें चला जाता है तो भगवान् उसे तुरंत अपना लेते हैं और तुरंत उसके पापोंका नाश कर देते हैं। अच्छा होनेपर रोगी वैद्यके पास क्यों जाय? रोगकी अवस्थामें ही वह जाता है और वैद्य उसे अच्छा कर देते हैं। वैद्यकी सफलता रोगीको अपनाकर उसे अच्छा करनेमें ही है। इसीसे भगवान् पुनीतोंकी परवा नहीं करते, शरण आये पामरोंपर प्रीति करते हैं—

ऐसी कवन प्रभुकी रीति?
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति॥

इसलिये कभी भी निराश न होकर सदा आशावादी रहना चाहिये। भगवान् करुणासागर हैं, उनकी सहज कृपासे हमारे सारे पाप-ताप तुरंत वैसे ही नष्ट हो जायँगे, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है। और यह विश्वास करना चाहिये कि भगवान्ने मुझे अपना लिया है। जहाँ ऐसा विश्वास होने लगेगा, वहीं स्वाभाविक ही पाप-ताप नष्ट होने लगेंगे और जहाँ यह विश्वास सुदृढ़ और निश्चित हो जायगा, वहाँ फिर पाप-ताप रहेंगे ही नहीं। सारी अशान्ति नष्ट होकर शान्तिकी उपलब्धि हो जायगी—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

॥ श्रीहरि: ॥

'कल्याण' के अबतक प्रकाशित लोकप्रिय विशेषाङ्क

[गताङ्क-संख्या ७ से आगे]

कल्याण-वर्ष ११, वेदान्ताङ्क (सन् १९३७ ई०) इसमें भारतीय संस्कृतिके महत्तम धर्म-दर्शन-'वेदान्त'-की बृहत् व्याख्यासहित वेदान्त-आधारित ज्ञान (चिन्तन)-को परमात्मप्राप्तिका प्रमुख साधन और आत्मकल्याणको मनुष्य-जीवनका परम प्राप्तव्य बताया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञानियों एवं वेदान्त-मार्गीय साधकोंके जीवन-दर्शन, सिद्धान्त तथा चरित्रोंपर ज्ञानवर्धक रोचक सामग्री प्रस्तुत की गयी है।

कल्याण-वर्ष १२, संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९३८ ई०) [कोड-नं० 627] महामहिम संतोंकी महिमासे मण्डित, उनकी शिक्षाओं, उपदेशों और पवित्र प्रेरणाओंसे पूरित यह 'संत-अङ्क' नित्य पठनीय और सर्वदा सेवनीय है। इसमें प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी संतों तथा भगवद्विश्वासी महापुरुषोंसहित अनेकों त्यागी, विरागी महात्माओंके आदर्श चरित्रोंका ऐसा रोचक वर्णन है कि जिसे पढ़कर परमार्थकी ओर सहज प्रवृत्ति होती है। मूल्य रु० ९० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष १३, मानसाङ्क (सन् १९३९ ई०) तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका सम्पूर्ण, मूल चौपाइयोंके साथमें सरल, सुललित हिन्दी-अनुवाद इसमें दिया गया है। 'मानस'-सम्बन्धी कुछ खोजपूर्ण विशेष लेख एवं भावपूर्ण अनेक सुन्दर बहुरंगे चित्र इसकी उल्लेखनीय विशेषताओंके रूपमें चर्चित रहे हैं। (वर्तमानमें यह तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस सटीक (सचित्र, सजिल्द) बृहदाकार एवं ग्रन्थाकार संस्करणोंके रूपमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १४, गीतातत्त्वाङ्क (सन् १९४० ई०) 'मानसाङ्क' की तरह ही इसमें श्रीमद्भगवद्गीताके मूल श्लोकोंके साथ सरल-सुबोध भाषामें प्रश्नोत्तरोंके रूपमें गीताकी विस्तृत, बड़ी ही सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। गीताकी विशेषताओं एवं महत्त्वपर प्रकाश डालनेवाले कुछ तात्त्विक लेख भी इसमें दिये गये हैं। (वर्तमानमें यह **'श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्वविवेचनी'** टीकाके नामसे प्रसिद्ध है तथा सचित्र, सजिल्द ग्रन्थाकारमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १५, साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९४१ ई०) [कोड-नं० 604] यह विशेषाङ्क उच्च कोटिके विचारकों, वीतराग महात्माओं, एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचारोंका बृहत् संग्रह है। इस दृष्टिसे साधनाके विभिन्न स्वरूपों, प्रकारों और साधना-मार्गोंका बहुमूल्य दिग्दर्शन करानेवाली इसकी साधनापरक लेख-सामग्री अत्यन्त उपयोगी है। अत: आत्मकल्याणकामी पुरुषों और साधकोंको इसका मार्ग-दर्शन अवश्य प्राप्त करना चाहिये। मूल्य रु० ७५ (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध।)

कल्याण-वर्ष १६, भागवताङ्क (सन् १९४२ ई०) कलि-पाप-ताप-संतप्त भयावह भव-समुद्रसे संतरण करानेवाली, भगवत्कथामृत-पीयूषिणी—श्रीमद्भागवतकी रसमयी कथाओंका यह बृहत् संग्रह विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। सम्पूर्ण भागवतके सरस हिन्दी-भावानुवादके साथ इसमें श्रीमद्भागवतमहापुराणकी महिमापर प्रकाश डालनेवाले कुछ विशेष लेख, श्रीमद्भागवतमाहात्म्य, पूजन-अर्चन एवं पारायण-विधि आदिपर महत्त्वपूर्ण सामग्री दी गयी है। इससे इसकी उपयोगिता और लोकप्रियतामें और भी अधिक वृद्धि हुई है। (वर्तमानमें यह ग्रन्थाकार मूल संस्कृतके साथ, हिन्दी-अनुवाद-युक्त दो खण्डोंमें एवं केवल भाषानुवाद एक ही भागमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १७, संक्षिप्त महाभारताङ्क (सन् १९४३ ई०) महाभारतकी अत्यधिक महिमा और उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंका समावेश होनेके कारण शास्त्रोंमें इसे 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें 'भारतीय ज्ञानका विश्वकोश' कहा गया है। इस ग्रन्थका पूर्वार्ध संक्षिप्त तथा सरल हिन्दी (अनुवादसहित)-में विशेषाङ्कके रूपमें तथा उत्तरार्ध (ग्यारह मासिक) साधारण अङ्कोंमें क्रमशः प्रकाशित हुआ था। वर्तमानमें यह 'संक्षिप्त महाभारत' के नामसे सचित्र, सजिल्द दो खण्डों [कोड-नं० 39, ५12]-में उपलब्ध है।

कल्याण-वर्ष १८, संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणाङ्क (सन् १९४४ ई०) वेद जिस परम तत्त्वका निरूपण करते हैं वही श्रीमन्नारायणतत्त्व श्रीमद्रामायणमें श्रीराम-रूपमें वर्णित है। इसीलिये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी लोकमें वेद-तुल्य प्रतिष्ठा है। मूल ग्रन्थ संस्कृतमें है। हिन्दी-पाठकोंके सुविधार्थ 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित वाल्मीकीय रामायणका यह संक्षिप्त और सरल हिन्दी-रूपान्तर बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। अब यह ग्रन्थाकार केवल हिन्दीमें [कोड-नं० 77] एवं संस्कृत मूलके सहित हिन्दी-अनुवाद भी दो खण्डोंमें [कोड-नं० 75, 76] अलगसे (सजिल्द ग्रन्थाकारमें) भी उपलब्ध है। [क्रमशः]

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

प्र० ति -७-९८

LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT.

जनवरी १९९८ ई० का विशेषाङ्क 'भगवल्लीला-अङ्क' मँगानेमें शीघ्रता करें

'कल्याण'-प्रेमियोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्षके विशेषाङ्क—'भगवल्लीला-अङ्क'को सहृदय पाठकोंद्वारा अधिकाधिक रूपमें अपनाये जानेके कारण २,३५,००० प्रतियोंका उसका बृहत् संस्करण अब प्राय: समाप्तिकी ओर है। अत: जो इच्छुक सज्जन थोड़ी बाकी बची इन प्रतियोंसे विशेष लाभ उठाना चाहें, उन्हें मँगानेमें अब शीघ्रता करनी चाहिये।

'भगवल्लीला-अङ्क'में भगवान्के निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार—विभिन्न स्वरूपों तथा अवतारोंकी दिव्य लीलाओंका सुन्दर भावमय वर्णन है। विशेषत: भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णके ऐश्वर्य-माधुर्यपूर्ण सरस लीलाचरित्र और मङ्गलमयी कथाएँ इसमें बड़ी मनोरम हैं। इसके अतिरिक्त भगवद्भावोंको बढ़ानेवाले भगवान्के लीला-सहचरों, भावुक भक्तों और भगवल्लीलानुरागी, विरागी संत-महात्माओंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र भी इसमें बड़े हृदयस्पर्शी और जीवनोपयोगी हैं। अनेक भावमय बहुरंगे, सादे तथा बहुतसे रेखाचित्रोंसे युक्त यह विशेषाङ्क अवश्य संग्रहणीय है। वार्षिक शुल्क रु० ८० (सजिल्दका रु० ९०), दसवर्षीय शुल्क रु० ५०० (सजिल्दका रु० ६००) है। कम-से-कम २५ प्रतियाँ एक साथ मँगाकर अपने यहाँसे वितरण करनेवाले उत्साही महानुभावों एवं पुस्तक-विक्रेताओंको प्रति-विशेषाङ्क रु० ६ प्रोत्साहन-राशि (कमीशन-रूपमें) दी जाती है। इच्छुक सज्जनोंको जनसेवाके इस पुनीत कार्यमें सहयोगी बनकर विशेष लाभ उठाना चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

'कल्याण' के दो महत्त्वपूर्ण विशेषाङ्कोंका पुनर्मुद्रण

१-शिवोपासनाङ्क (कोड-नं० 586) कल्याण-वर्ष ६७ (सन् १९९३ ई०)-में प्रकाशित यह विशेषाङ्क पाठकोंकी विशेष माँगपर पुनर्मुद्रित किया गया है। इस अङ्कमें शिव-तत्त्व एवं उपासना-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सामग्रीके अतिरिक्त भगवान् विष्णुकी शिवोपासना, जगन्माता लक्ष्मीकी शिवनिष्ठा, भगवान् नृसिंहकी शिवभक्ति एवं महर्षि वसिष्ठ, महर्षि दुर्वासाकी शिवोपासना और महर्षि लोमश, महामुनि गर्ग, वाल्मीकि आदिकी शिव-शरणागति, भक्ति और उपासना-विषयक सुन्दर आख्यान प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त शैवतीर्थ, द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग एव सुप्रसिद्ध शिव-मन्दिरोंके वर्णन-सहित अनेक शिवभक्तोंके रोचक तथा प्रेरक चरित्र भी इसमें दिये गये हैं। सजिल्द, पृष्ठ-सं० ४६४, मूल्य रु० ६०, डाकखर्च रु० २३, रजिस्ट्रीसे।

२-श्रीरामभक्ति-अङ्क (कोड-नं० 628) कल्याण-वर्ष ६८ (सन् १९४९ ई०)-में प्रकाशित इस अङ्कमें श्रीरामभक्तिके विभिन्न पक्षोंपर प्रेरक कल्याणकारी मार्गदर्शन है। वस्तुत: इस कलिकालमें संतप्त, दु:ख-दारिद्र्य-ग्रस्त नाना कष्ट-पीड़ित आहत और अशान्त मानव-मनके लिये एकमात्र श्रीरामकी भक्तिका आश्रय और लीला-कथाओंका सेवन—श्रवण, मनन, चिन्तन आदि ही शान्तिप्रद और कल्याणकारी हैं। इसके अतिरिक्त इस अङ्कमें श्रीरामतत्त्व एवं श्रीरामके दिव्य गुण-गणोंका विवेचनसहित, उनकी परम मनोहर लीलाओंका चित्रण एवं श्रीराम-भक्तों, सेवकों, उपासकों और लीला-सहचरोंके विभिन्न चरित्रोंका प्रतिपादन है। भक्ति, ज्ञान, साधना, सत्प्रेरणा और रोचकताकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय है। इसकी पृष्ठ-सं० ४९६ तथा मूल्य रु० ६५ है, डाकखर्च रु० २२, रजिस्ट्रीसे।

शीघ्र प्रकाश्य

भगवान् सूर्य— (कोड-नं० 867) 'गीताप्रेस'से (१० $\frac{१}{२}$" × १४ $\frac{१}{२}$" के) विशेष आकार-प्रकारमें प्रथम बार प्रकाशित इस पुस्तकमें भगवान् सूर्यके बारह महीनोंमें अलग-अलग स्वरूपोंके ध्यान-उपासना, लीला-कथाका अनुपम चित्रण है तथा प्रत्येक स्वरूपके आर्टपेपरपर उपासना-योग्य आकर्षक चित्र भी हैं। पुस्तकके अन्तमें भगवान् सूर्यके उपासना-हेतु सुन्दर स्तोत्र भी दिये गये हैं। मूल्य रु० ३५, डाकखर्च रु० १८, रजिस्ट्रीसे।

नवीन प्रकाशन

हरीपाठ (मराठी) (कोड-नं० 855) महाराष्ट्रके घर-घरमें नित्य पाठ-हेतु संत ज्ञानेश्वरद्वारा रचित महत्त्वपूर्ण पुस्तक। मूल्य रु० २, डाकखर्च रु० १.००

हनुमानचालीसा (उड़िया) (कोड-नं० 856) हिन्दी, तमिल, बँगला, तेलगू, गुजराती एवं कन्नड़के बाद अब उड़ियामें भी उपलब्ध।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**